इस श्रुति स्मृति में विधान किये मद्य मांस मैथुन में दोष इस लिये नहीं है कि वह शास्त्रोक्त हो जाने से धर्म के लक्षण में आगया है। (चोदनालक्षणोऽर्थोधर्मः) का अभिप्राय भी यही है कि मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद में कहा सभी धर्म है। वेद में जो कर्त्तव्य कहा है वह अस्मदादि अल्प बुद्धि मनुष्यों के विचार से विरुद्ध भी होतो भी चोदना लक्षण होने से वही धर्म है। क्यों कि मनुष्यों के विचार सब के कभी भी एक से होते नहीं। पर वेद की प्रेरणा सदा एक सी ही रहती है। हमने अब तक अच्छे प्रकार निश्चय किया है कि वेद शास्त्र की आज्ञा को त्रिकाल में अवाध्य मानने वाले श्री वैष्णव सम्प्रदायों के भी बड़े २ आस्तिक विद्वान् वेदोक्त मद्य मांस मैथुन को वैसा ही ज्यों का त्यों मानने से लेशमात्र भी इनकार नहीं करते और न ऐसा विचार देख के वेद से अश्रद्धा करते हैं। और भगवान् के कहे इस वचन के अनुसार वेद का प्रमाण मानते हैं कि–

तस्माच्छास्त्रंप्रमाणंते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥

अर्थात् क्या कर्त्तव्य और क्या अकर्त्तव्य है इस बात को जानने के लिये वेद शास्त्र ही प्रमाण है।

इस में मनुष्य का कथन मात्र प्रमाण नहीं है जो वेदोक्त है वही धर्म है जिस के लिये जिस काम को जिस प्रकार से जब कर्त्तव्य कहा है उसके लिये उसी प्रकार किया वही निर्दोष धर्म है। और जो श्रुति स्मृति से विरुद्ध है वही सदोष अधर्म है। इस लिये वेदोक्त मद्य मांस मैथुन में दोष नहीं। परन्तु यदि इस वेद शास्त्रोक्त मद्य मांस मैथुन से भी सर्वथा निवृत्ति हो जाय तो उस का अनन्त फल है। इस पर यदि वैष्णव लोग कहें कि शैव शाक्तादि की अपेक्षा मद्यमांस से हमी लोग बहुत बचे हैं इस कारण हमारा ही सम्प्रदाय उत्तम रहा।

तब समाधान यह है कि मद्य मांस मैथुन तीनों से बचना ही परमार्थ है। सो वेदोक्त तत्वज्ञान होने पर ही मनुष्य इन मद्यादि से विरक्त होता है किसी प्रकार के भांग आदि नशा में वा निद्रा तन्द्रा आलस्य में सुख वा आनन्द मानने वाला मद्य सेवन का साथी है। अन्य को दुःख पहुंचा कर भी जो अपने लिये पुष्ट और स्वादिष्ठ भोजन प्राप्त करने में तत्पर मनुष्य है वह मांस भक्षण का साथी है। तथा कोमल स्पर्श में सुख मानने वाला मैथुन का साथी है। क्योंकि वेहोशी रूप तमोगुण की चाहना मद्य का लक्षण और अन्य को कष्ट पहुंचा कर पुष्ट स्वादिष्ठ भोजन की चेष्टा करना मांस का अभिप्राय

तथा कोमल (मुलाइम) स्पर्श के सुख का लालच मैथुन का मतलब है। इन लक्षणों को ध्यान में रक्खा जाय तब मद्य मांस मैथुन से श्री वैष्णव लोग भी बचे नहीं कहे जा सकते हैं। इन तीनों में मैथुन मुख्य है। मद्य मांस दोनों मैथुन के ही साधन व सहायक होने से प्रवृत्त हुये हैं। लोक में भी मैथुन के आनन्द में अधिक २ गोता लगाना चाहते हुये ही मनुष्य मद्य मांस के विशेष उपासक दीखते हैं। इसी लिये ज्ञानी लोगों ने विचार पूर्वक निश्चय कर के लिखा है कि—

संसार ! तवनिस्तारपदवीनदवीयसी ।
अन्तरादुस्तरानस्युर्यदिरे ! मदिरेक्षणाः ॥

अर्थः—अरे संसार ! तुम्हारे पार हो जाने का मार्ग बहुत दूर वा कठिन नहीं है यदि बीच में स्त्री रूप दुस्तर रुकावट न हो। अर्थात् परमार्थ की ओर चलने में पुरुष के लिये स्त्री के संग की वासना ही सर्वोपरि रुकावट वा हानि कारक है। तथा वैसे ही स्त्री के लिये पुरुष के संग की चाहना परमार्थ में बड़ा विघ्न है। इस लिये योग रसायन में लिखा है कि-

विषयेष्वपिकष्टोऽयं विषयःस्त्रीतिनामतः ।
जीवत्यन्यैःकिलाकृष्टः स्त्रियाकृष्टोनजीवति ॥ १ ॥
स्त्रीरत्नंध्यातमात्रंतु ब्रह्मणोऽपिमनोहरेत् ।
किंपुनश्चेतरेषांतु विषयेच्छानुवर्त्तिनाम् ॥ २ ॥
स्त्रीरत्नंमोहनंसृष्टं दृष्टमाशीविषोपमम् ।
यदीच्छेदात्मनःश्रेयो मनसाऽपिनचिन्तयेत् ॥ ३ ॥

अर्थः—यद्यपि सभी विषय मनुष्य को अधोगति में ले जाने वाले हैं तथापि स्त्री रूप विषय ही सर्वोपरि कष्ट देने वाला कठिन है क्योंकि अन्य विषयों में आसक्त मनुष्य बल की विशेष हानि न होने से अधिक काल तक जीवित रह सकता है परन्तु स्त्री रूप विषय की ओर खिंचा हुआ बलहीन हो जाने से अधिक नहीं जी सकता। रूपवती स्त्री का ध्यान वा स्मरण आते ही जब ब्रह्मा जी का भी मन हर जाता है तो विषय भोग की इच्छा के पिछलगा अन्य मनुष्यों का तो कहना ही क्या है !। मोहित करने वाले पदार्थों में स्त्री सब से अधिक मोहनी है कि जो सांप के विष के तुल्य मोहित कर देती है। यदि परमार्थी पुरुष अपना कल्याण चाहता है तो उस को मन से भी स्त्री का स्मरण नहीं करना चाहिये ॥

तथा धन्याष्टक स्तोत्र में भगवान् श्रीमच्छङ्कराचार्य जी ने कहा है कि—

अहिमिवजनयोगं सर्वदा वर्जयेद्यः कुणपमिव सुनारीं त्यक्तुकामोविरागी । विषमिव विषयान्यो मन्यमानोदुरान्ता-ज्जयतिपरमहंसो मुक्तिभावंसमेति ॥ ४ ॥

अर्थः—जो विरक्त मुमुक्षु ज्ञानी पुरुष सांप के तुल्य मनुष्यों के संग से सदा बचे तथा मुर्दा का स्पर्श करने से बचने के तुल्य रूपवती स्त्री से बचे और अन्य विषयों को जो विष के तुल्य मानता हो वह परम हंस मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। पाठक महाशय ! इन ऊपर के प्रमाणों से सिद्ध होगया कि परमार्थी पुरुष निवृत्ति मार्ग में चलना चाहता हुआ सब से पहिले काम देव के वाणों से बचे। क्यों कि जो काम वाणों से नहीं बच पाता उस का निवृत्ति मार्ग में पग रख सकना सर्वथा असम्भव है। इसी लिये दोषों में काम पहिले रक्खा गया है। तब शोचिये कि जो वैष्णव लोग स्त्री सम्बन्धी काम से नहीं बचे वे स्थूल मद्य मांस के सेवन से बचे भी हों तथापि वे लोग निवृत्ति मार्ग में प्रवृत्त नहीं मानें जावेंगे। परन्तु पञ्चदेवोपासक स्मार्त्त लोगों में वानप्रस्थ और संन्यास दो आश्रम ही तीनों एषणाओं से बचने के लिये प्रसिद्ध हैं। तदनुसार जगत् भर में प्रसिद्ध स्वामी विश्वरूप, विशुद्धानन्द और भास्करानन्दादि अनेक विरक्त महात्मा संन्यासी स्त्री संसर्ग से सर्वथा विरक्त होते आते हैं। इस से सिद्ध हुआ कि गृहस्थ वैष्णव निवृत्ति मार्गी नहीं माने जावेंगे। और मनु आदि सब स्मृतियों में मद्य मांसादि से बचाने के ही उपाय हैं किन्तु स्मृति कर्त्ता ऋषि लोग न मद्यमांसादि को अच्छा कहते और न उस से उदासीन हैं। परन्तु वेद को परम शिरोधार्य प्रमाण मानने वाले हैं। इसी लिये यज्ञादि में आये वेद विधि विहित मद्यमांसादि को बुरा कहने का साहस उन को कभी स्वप्न में भी नहीं हुआ।

वास्तव में ठीक २ सत्य तो यह है कि स्मृतियों में ऋषि तथा आचार्यों ने जो कुछ मद्य मांस का विधि निषेध लिखा है वह सर्वथा वेदानुकूल है। अग्निष्टोमादि यज्ञों में जहां २ जैसा २ मद्यमांसादि का विनियोग है वह अब तक सिद्ध कोटि में है। क्या गोस्वामी जी वेदों में सर्वथा मद्य मांस का विनियोग नहीं ऐसा (आर्य्य समाजियों के तुल्य) मानते हैं ?। यदि ऐसा है तब तो उन को प्रथम उचित यह था कि वैष्णव संप्रदायों के सब विद्वानों की प्रथम

एक राय करके स्मार्त्त विद्वानों के साथ वेद के सिद्धान्त पर शास्त्रार्थ चलवाते। सो यह असम्भव है कि वैष्णव सम्प्रदायों के सब विद्वान् लोग यह मानलें कि वेद में मद्य मांसादि नहीं। और यदि वेद में मद्य मांसादि का विनियोग ठीक है ऐसा गोस्वामी जी मानते हैं तब उन को प्रथम चढाई वेद पर ही करनी चाहिये थी। स्मृतियां तो वेद के पीछे २ चलने वाली हैं। वैष्णव सम्प्रदाय मद्य मांस का सर्वथा निषेध करता है और वेद में मांसादि का विनियोग है इस लिये वैष्णवों को वेद से उदासीनता धारण करने पड़ी। अपने नित्य नैमित्तिक कर्मों में भी वेद की विशेष आवश्यकता नहीं रक्खी। चाहे यों कहो कि वेद को भी त्याग कर उस से विमुख होने की आवश्यकता प्रतीत हुई। हमारी तो राय यह है कि जिन लोगों का मत यह है कि वेद में मद्य मांसादि सर्वथा नहीं वा है तो प्रक्षिप्त है अथवा उस का अर्थ ही कुछ और है। ऐसा मानने वाले सभी आर्य्यसमाजियों के बड़े भाई वेद विरोधी हैं कि जो वेद के प्रत्यक्ष सिद्धान्त को लौटना चाहते हैं। अब रहा यह कि वेद में यह मद्यमांसादि क्यों है ऐसा प्रश्न उन के मन में तो उपस्थित हो नहीं सकता जो वेद को स्वतःप्रमाण मानते हैं। अस्तु सारांश यह निकला कि सामान्य कर लौकिक विचार से जो वा जैसा मद्यमांसादि का प्रचार जगत् में है उस के भक्षणादि का स्मृतियों में सर्वथा निषेध है। और वेदादि शास्त्र के अनुरोध से जो कुछ लेशमात्र उस मद्यादि का आदर है वह विधि के अनुष्ठान की पूर्त्ति के लिये है किन्तु भक्षण कराने के लोभ लालच से कुछ नहीं है यह स्मार्त्त धर्म का परम सिद्धान्त जानो॥

गोस्वामी—यदि मनु याज्ञवल्क्यादि संहिताओं में ईश्वर ही से जगत् की सृष्टि मानी जाय और इन को जड़वाद के कलंक से मुक्त किया जाय तो भगवान् वादरायण के लक्षणानुसार इन को स्मृति नहीं कह सकते हैं।

समाधान—मालूम होता है कि अभी तक गोस्वामी को कुछ भी निश्चय नहीं हुआ। मनुआदिसंहिताओं में ईश्वर से सृष्टि मानी है वा जड़ से? तभी तो सन्देहात्मक लिख मारा। हम पहिले भी लिख चुके हैं कि वादरायण भगवान् ने स्मृति का यह लक्षण नहीं किया कि जड़वाद प्रतिपादक ग्रन्थों का नाम स्मृति है। किन्तु व्यास सूत्र का वहां यही अभिप्राय है कि ईश्वर की अपेक्षा को छोड़कर सांख्य आदि जो कोई केवल प्रकृति से सृष्टि मानते हैं उन का खण्डन व्यास जी ने ब्रह्मसूत्रों में किया है। वैसे तो सर्व सम्प्रदायों के शिरोधार्य भगवद्गीता में स्वयं भगवान् ने ही प्रकृति से सृष्टि कही है।

मयाध्यक्षेणप्रकृतिः सूयतेसचराचरम् ।

अर्थ—मुझ अधिष्ठाता मालिक की सहायता से मेरी इच्छानुसार प्रकृति इस सब चराचर संसार को रचती है। सांख्य शास्त्र में जिसको प्रकृति कहा है उसी को वेदान्त में माया कहते हैं इसी लिये श्वेताश्वतर की श्रुति में दोनों की एकता की गई है।

मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनंतु महेश्वरम् ।

अर्थ—माया नाम प्रकृति का है और माया के स्वामी महेश्वर हैं। इस दशा में माया से सृष्टि कहो वा प्रकृति से कहो कुछ भेद नहीं। यदि प्रकृति से सृष्टि कहने के कारण कोई स्मृति जड़ वाद के दोष से ग्रस्त कही जाय तो क्या गोस्वामी जी ऊपर लिखे भगवान् के वचन का भी निरादर करेंगे ?। हमारी समझ में कोई भी वैष्णव विद्वान् श्री भगवद्गीता के परम प्रमाण मानने से मुख न मोडेगा। इस लिये गोस्वामी जी को भी वेदोक्त अटल सिद्धान्त मानने ही पडेगा कि सृष्टि करने में ईश्वर प्रधान मुख्य अधिष्ठाता है उसी की इच्छानुसार संसार की रचना होती है। और प्रकृति वा माया जो कुछ वस्तु ठहरे वह ईश्वराधीन है। यही सिद्धान्त मनुयाज्ञवल्क्यादि सभी स्मृतियों में विशेष कर मिलेगा। सांख्यवादियों में जिनका यह मत था कि सृष्टि करने में प्रकृति प्रधान है। उनके मत का खण्डन वहां वेदान्त दर्शन में किया गया है। और शोचना तो यह भी था कि महर्षि कपिल देवजी भी तो भगवान् के अवतारों में परिगणित हैं। फिर कपिल देव का सांख्य मत सर्वथा खण्डित कैसे हो जायगा ?। इसी लिये श्री भगवद्गीता में सांख्य मत को बुरा कहीं भी नहीं कहा गया। इस से ज्ञात होता है कि विरोध नहीं है किन्तु शास्त्रीय सिद्धान्तों की संगति न लगा सकने में हमी लोगों का दोष है। वेदान्त सूत्रों तथा भाष्य का विचार अन्तिम कक्षा परक है। इससे स्मृतियों में जड़वाद का दोष लेशमात्र भी नहीं है।

गोस्वा० स्मार्त्तधर्म के अर्वाचीन होने का एक यह भी प्रमाण है कि इस में परस्पर स्वार्थ विरोध है।

मन्वर्थविपरीताया सास्मृतिर्नैवशस्यते ॥

अर्थ—जो स्मृति मनु के अर्थ से विपरीत हो वह प्रशस्त नहीं है। इससे यह सिद्ध होता है कि उस समय मनुस्मृति के विरुद्ध अर्थ वाली स्मृतियां थीं

मनु ने अपने आप भी अपनी स्मृति की प्रशंसा और अपने से विरुद्ध स्मृतियों की निकृष्टता कही है।

(इदं शास्त्रंतुकृत्वाऽसौ मामेवस्वयमादितः।
विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ॥ १ ॥

अर्थ—सृष्टि के आदि में यह शास्त्र बनाकर ब्रह्मा ने मुझको ही पढ़ाया और मैंने मरीच्यादि मुनियों को पढ़ाया। मनु० अ० १।५८) जैसे आज कल के नोटिस देनेवाले अपनी २ किताबों को अच्छी कहकर दूसरों की किताबों को रद्दी बता देते हैं ॥

उत्तर—बड़े आश्चर्य की बात है कि—मधु सूदन गोस्वामी परस्पर विरोध दिखाने की प्रतिज्ञा द्वारा मनु आदि के धर्म शास्त्रों को आधुनिक ठहराने का दावा करके भी फिर परस्पर विरोध का एक भी प्रमाण न दें! उन को ऐसे लेख से लज्जित होना चाहिये। क्या गोस्वामी का प्रतिज्ञाहानि रूप यह निग्रह स्थान नहीं है?। अब रहा मनु के धर्मशास्त्र की प्रशंसा अन्य स्मृतिकारों ने तथा मनु जी ने स्वयं भी की है सो सर्वथा सत्य है। संसार में कोई कोई मनुष्य वा पुस्तक अथवा कोई वस्तु ऐसा होता ही है जिस की प्रशंसा सभी को करने ही पड़ती है। हमारी समझ में आज तक कोई भी वेद मतावलम्बी सनातनधर्मी पुरुष ऐसा नहीं हुआ जिस ने मनुस्मृति की निन्दा वा खण्डन किया हो क्योंकि इस के लिये कोई भी प्रमाण किसी पुस्तक में नहीं मिलता और वैष्णव सम्प्रदाय के विद्वानों में भी आज तक कोई ऐसा सुनने देखने में नहीं आया जिसने मनुस्मृति जैसे सर्वहित सम्पादक धर्मशास्त्र का खण्डन किया हो। आर्यसमाजी मत यद्यपि अधिकांश वेदादि शास्त्र से विरुद्ध है तो भी वे लोग मानव धर्मशास्त्र को अधिकांश अच्छा मानते हैं। परन्तु अब हाल में श्रीमान् मधुसूदन गोस्वामी जी ही एक ऐसे पुरुष सुनने में आये हैं जिन की पण्डिताई म्यान से बाहर निकली अथवा अन्तःकरण में इतना पाण्डित्य बढ़ा जो समा न सका इससे उफान खाकर बाहर निकल पड़ा। पाठक महाशय! आप लोगों ने जगत् प्रसिद्ध बड़े २ विद्वानों के नाम सुने होंगे जिन में वैष्णव सम्प्रदाय के अनुगामी श्रीमान् राममिश्र शास्त्री जी भी हैं। पर मानवधर्मशास्त्र पर शस्त्र चलाने का साहस किसी को न हुआ। एक बात तो मधुसूदन गोस्वामी की अवश्य सिद्ध होगयी कि इन को देशान्तर में कोई भी नहीं जानता था सो मनुस्मृति का खण्डन करने से गोस्वामी जी ने प्रसिद्धि तो पायी और जिन का यह सिद्धान्त है कि—

येनकेनप्रकारेण प्रसिद्धःपुरुषोभवेत् ॥

यदि गोस्वामी जी धर्मशास्त्रों का खण्डन न करते तो हम (सम्पादक आ० स०) भी उन को पूर्वपक्ष में लेकर इतना क्यों लिखते और न लिखने से गोस्वामी को पाठक लोग भी क्या जानते। अस्तु गोस्वामी भी दिल्ली के पांच सवारों में परिगणित तो हुए। बृहस्पति स्मृतिकार ने जो मनु की प्रशंसा लिखी है उस का आधा टुकड़ा तो गोस्वा० ने लिखा परन्तु उस का पूर्वार्द्ध छोड़ गये जैसा कि स्वामी दयानन्द ने भी अपने मतलब से विरुद्ध श्लोकादि का आधा २ भाग प्रायः छोड़ दिया है। गोस्वा० ने भी कदाचित् स्वामीपन में तुल्य होने से स्वा० द० से ही यह सीख लिया हो। उस का पूर्वार्द्ध यह है–

वेदार्थोपनिबन्धृत्वात्प्राधान्यंहिमनोःस्मृतम् ।

मनु जी को भृगु जीने वेद तत्त्वार्थवित् कहा है। वेद के अर्थ वा अभिप्राय का मनु जी ने ठीक २ अपने धर्मशास्त्र में संग्रह किया है। इसी कारण मनु जी का धर्मशास्त्र सब से मुख्य है। इसी से–

मन्वर्थविपरीतायां सास्मृतिर्नैवशस्यते ॥

सर्वथा वेदानुकूल मनुस्मृति के अभिप्राय से विरुद्ध कोई भी स्मृति वेद विरुद्ध होने से माननीय नहीं है। अब रहा यह कि "मनु स्मृति के समय में अन्य भी उस से विरुद्ध स्मृतियां बन गयी थीं" इस विचार से गोस्वामी जी मनुस्मृति को आधुनिक ठहराना चाहते हैं सो यह उन की बड़ी भूल इस लिये है कि प्रथम तो उक्त लेख से यह सिद्ध नहीं होता कि कोई स्मृति मनु से विरुद्ध बन चुकी थी तभी ऐसा कहा गया हो किन्तु यह कथन भावी सम्भावना के विचार से भी ऐसा ही कहा जा सकता है कि मनु के अर्थ से विपरीत स्मृति होनी भी सम्भव हैं पर वे प्रशस्त नहीं मानी जायगीं। अथवा बृहस्पति आदि स्मृतियां मनु से बहुत पीछे बनी थीं तब मनु से विरुद्ध भी कोई २ स्मृति बन गयी थीं। उन्हीं को वेद विरुद्ध होने से अग्राह्य कहा है। इस से मनु स्मृति का अर्वाचीन होना सिद्ध नहीं होता।

और यदि दुर्जनतोष न्याय से यही मान लिया जाय कि म० गोस्वामी जी का कहना ठीक है कि मनुस्मृति बनने के समय उस से विरुद्ध अन्य स्मृतियां भी बन गयी थीं तो भी मनु का अर्वाचीन होना सिद्ध नहीं होता क्यों कि विरुद्ध स्मृति पीछे ही बन सकें पहिले सृष्टि के आरम्भ में न बन

सकें इसके लिये गोस्वामी के पास क्या कोई नियम है?। अर्थात् यह नियम कदापि नहीं हो सकता कि वेद से विरुद्ध अन्याय अधर्म अन्धकारादि पहिले से न हों। किन्तु दिन रात के समान धर्म अधर्म, वेदानुकूल वेद विरुद्ध,ज्ञान अज्ञान हानि लाभ जीवन मरण आदि परस्पर विरुद्ध दो २ भाव अनादि काल से साथ ही साथ चले आते हैं। इस वर्त्तमान ब्राह्म दिन रूप कल्प में ७१। ७१ चतुर्युगी के छः मन्वन्तर बीत चुके हैं जिन में चार सौ बत्तीस बार कलियुग आ चुका है। और वर्त्तमान वैवस्वत मन्वन्तर में यह अट्ठाईसवां कलियुग है। कलियुगों में सदा से ही अधर्म बढ़ता चला आया है। इस से जब ये अच्छे बुरे सभी अनादि अति प्राचीन हैं। तब अति प्राचीन काल में बने मानवधर्मशास्त्र के साथ में ही उस से विरुद्ध स्मृतियां भी बन गयीं हों इसमें कुछ भी बाधा नहीं है। मनु से विरुद्ध स्मृतियों का खण्डन केवल इस विचार पर नहीं है कि–वे मनु से विरुद्ध हैं इसी लिये त्याज्य हैं किन्तु जब मनु सर्वथा वेदानुकूल है तो उस से विरुद्ध स्मृतियां सुतरां वेद विरुद्ध सिद्ध हुईं। इसी लिये मनु जीने—

यावेदबाह्याःस्मृतयो याश्चकाश्चकुदृष्टयः।

वेद विरुद्ध स्मृतियों को तमोगुणी त्याज्य कहा है। अब रही मनु की प्रशंसा सो अन्य भी अनेक ग्रन्थ ऐसे हैं जिनकी प्रशंसा प्रायः सभी मतावलम्बी करते हैं। उपनिषद् ग्रन्थों को जर्मन वाले भी सर्वोपरि उत्तम ग्रन्थ मानते हैं। भगवद्गीता भर्तृशतकादि अनेक पुस्तक सर्वमान्य हैं। वैसे मनुस्मृति पुस्तक भी प्रशंसा के योग्य होने से ही सर्वमान्य है। और म० गोस्वामी ने नोट में लिखा है कि "गृहस्थ वैष्णव भी ऋतु गामी स्वदारनिरत होने के कारण ब्रह्मचारी ही हैं" सो स्वदार निरत पुरुष तो वैष्णवों में तथा वैसे ही अन्य सम्प्रदायों में भी अनेक मिलेंगे परन्तु ऋतुगामी लाखों में कोई ही निकलेगा। और जैसे कोई वैष्णव स्वदार निरत होंगे वैसे अन्य भी होंगे। व्यभिचारी वेश्यागामी भी सब में होंगे तब वैष्णवों में अधिकता क्या हुई?। और इस अवसर में मधु सूदन गोस्वामी से हमें यह भी पूछना है कि जो पुरुष ऋतुकालाभिगामी तथा स्वदार निरत हो वह ब्रह्मचारी है यह बात आपने किस प्रमाण से जानी?। क्योंकि ऐसी बातों को सब सनातनधर्मी मनु आदि स्मृतियों में लिखी होने से जानते मानते हैं जैसे–मनु अ० ३

ऋतुकालाभिगामीस्यात् स्वदारनिरतःसदा।

बड़े आश्चर्य की बात है कि मनु आदि स्मृतियों में लिखी धर्म की बातों के मानने का अभिमान दिखाते हुए भी म० गोस्वामी उन्हीं स्मृतियों का खण्डन करें ?। यहां वही कहावत चरितार्थ हुई कि " जिसमें खांयं उसी में छेद करें " अस्तु–

गोस्वामी—शाक्त धर्म का अभ्यास था वैष्णव धर्म की प्रतियोगिता करना। जब उसने मद्य मांस में औदासीन्य किया और स्मार्त्त रूप धरा अब क्या लेकर वैष्णव धर्म का विरोध करे। तब ढूंढ़ ढांढ कर तिर्यक् पुण्ड्र और वेध लेकर झगड़ा किया।

वैष्णव जन ब्राह्म मुहूर्त्त में उठकर क्रिया कलाप करते हैं। इसी से अरुणोदय विद्ध एकादशी को त्याग कर द्वादशी व्रत करते हैं। स्मार्त्तों ने इसके विरुद्ध सूर्योदय वेध का उल्लेख किया।

वैष्णव जन ऊर्ध्वगति को लक्ष्यकर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं। स्मार्त्त धर्म ने तिर्यक् पुण्ड्र निकाल कर अपना हठ पूरा किया। यहां यह भी कहना आवश्यक है कि मनु याज्ञवल्क्यादि स्मृतियों में तो कहीं सूर्योदय विद्ध एकादशी का त्याग और तिर्यक् पुण्ड्र का नाम भी नहीं है। पर न जाने हमारे स्मार्त्तसाहब कहां से यह डंका पीटने लगे। निर्णयसिन्धु आदि निबन्ध ग्रन्थों में एकादशी के वेध का प्रकरण लेकर वैष्णव स्मार्त्त का भेद किया है अरुणोदय वेध पर एकादशी के वचनों को वैष्णव परक लिख कर और सूर्योदय वेध परक वचनों को स्मार्त्त पर लिखकर समन्वय किया है। आज कल के सब स्मार्त्तम्मन्य लोग निर्णयसिन्धु आदिक निबन्धों को लेकर स्मार्त्त मत और स्मार्त्त धर्म्म का झण्डा उड़ाते हैं। पर निर्णयसिन्धु को स्मृति कहना ऐसा है जैसे सतनजा को चावल वा हींगाष्टक को जीरा कहना है।

समाधान–शाक्त धर्म ने स्मार्त्तरूप कभी नहीं धरा यह हम पहिले भी लिख चुके हैं। यह बात गोस्वामी की कपोल कल्पित निर्मूल युक्ति प्रमाण से रहित है। स्मार्त्त लोगों में पांच देवों के अन्तर्गत शक्ति की भी उपासना जैसे है वैसे ही विष्णु भगवान् की भी उपासना करना स्मार्त्तों को अभीष्ट है। परन्तु विष्णु की उपासना होने पर भी स्मार्त्त लोग जैसे वैष्णव नहीं माने जाते वैसे ही सामान्यतया शक्ति की उपासना होने पर भी स्मार्त्त लोग शाक्त नहीं कहाते जैसे केवल विष्णु के उपासक वैष्णव कहाते हैं। वैसे ही केवल शक्ति के उपासक शाक्त अब भी पृथक् हैं किन्तु शाक्त और स्मार्त्त एक कदापि नहीं हैं। स्मार्त्त

लोगों का विरोध जैसे शाक्तों के साथ नहीं वैसे ही वैष्णवों के साथ भी नहीं है क्योंकि उन के यहां शक्ति और विष्णु भी उपास्य देव हैं। पर कोई २ गोस्वामी आदि वैष्णव लोग ही स्मार्त्तों के तथा शाक्तादि के साथ विरोध करतेहैं। तिर्यक् पुण्ड्र पर हम पहिले लिख चुके हैं कि गृह्य सूत्रोक्त वेद मन्त्र विनियुक्त होने से यह कृत्य वेदानुकूल है। ब्राह्म मुहुर्त्त में उठकर स्नान सन्ध्यादि कर्म करना मानना वैष्णव स्मार्त्त दोनों में समान है। वैष्णव लोग ही ब्राह्म मुहुर्त्त में उठते हैं वा वैष्णवों को ही उस काल में उठना चाहिये ऐसा कोई युक्ति प्रमाण न होने से गोस्वामी का लिखना असत् है किन्तु अरुणोदय विद्ध और सूर्योदय विद्ध दोनों प्रकार के एकादशी के व्रत में इतिहास पुराणादि ग्रन्थों में तथा स्मार्त्त लोगों की दृष्टि में कोई झगड़ा वा विरोध नहीं है। दोनों पक्ष के वचन ग्रन्थों में मिलते हैं किसी ने कोई पक्ष स्वीकार कर लिया झगड़ा कुछ नहीं। झगड़ा केवल गोस्वामी जैसे धर्मशास्त्रों के विरोधी लोगों के मन में है। "उपदेश औषध कौन विधि लागे तो हि सुन्दर असाध्य रोग भयो जाके मन है" हमारे गोस्वामी ने यह विलक्षण हंसी कीसी बात लिखी है कि "वैष्णव लोग ऊर्ध्वगति को लक्ष्यकर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक धारण करते हैं" मालूम होता है कि ऊर्ध्वपुण्ड्र के लिये गोस्वामी को कोई प्रमाण नहीं मिला। तब यह युक्ति शोची सोभी निर्बल है। आप यदि किसी प्रकार की माला धारण करते होंगे तो कण्ठ में से नीचे छाती पर लटकाते होंगे तब क्या नीचे को माला धारण करने में अधोगति का लक्ष्य करते हो?। अथवा धर्म सम्बन्धी जो २ काम नीचे को करने पड़ते हैं उन सब में अधोगति का लक्ष्य यदि गोस्वामी करते हैं तब तो ऊर्ध्व पुण्ड्र के लिये लिखी युक्ति भी बन सकेगी।

इस प्रसंग में एक दृष्टान्त का स्मरण आगया कि किसी समय एक मुसलमान और एक हिन्दु में बहस होने लगी तब मुसलमान साहब बोले कि-"देखो हमारे मजहब में डाढी रखने की चाल बहुत अच्छी है। कयामत के दिन जब हम लोग खुदा बन्द के इजलास में जायंगे तब हमारी डाढ़ी देख के खुदाबन्द झट ही जान लेंगे कि यह ईमान लाया है। बस हमारे लिये बहिश्त में भेजने का हुक्म हो जायगा। और तुम्हारे मुख पर कुछ निशान ही नहीं इस से तुम को दोजख में भेजेगा।" इस पर हिन्दु साहब बोले कि "हम लोग जब खुदा के इजलास में जांयगे तब पहुंचते ही पगड़ी उतार के शिर झुका के प्रणाम करंगे। शिर झुकाते ही हमारे धर्म का चिह्न हमारी चोटी खुदा को दीख

जायगी अर्थात् चोटी दिखाने के लिये हमे शिर झुकाना पड़ेगा। जिस से नमना भी स्वयं हो जायगा और तुम को डाढी दिखाने के लिये उजवक कासा मुंह उठाना पड़ेगा।" इस प्रकार मुसलमान साहब लाजवाब हुए। तथा हिन्दु साहब की युक्ति प्रबल रही। पर यहां गोस्वामी जी की युक्ति हमारी राय में बहुत निर्बल है। हम यह मानते हैं कि ऊर्ध्व पुण्ड्र वा तिर्यक् पुण्ड्र चिह्न अपने २ सम्प्रदाय के अनुसार सदाचार के सूचक होने से उन २ के लिये सभी अच्छे हैं। पर ये चिह्न धर्म के कारण नहीं हैं (न लिङ्गं धर्मकारणम्) इसी लिये सब चिह्नधारी ठीक धर्मात्मा वा पूर्ण भक्त नहीं दीखते। तथापि भिन्न २ महकमों के तुल्य चिह्न पृथक् २ होने चाहिये। और चिह्न धारियों को उचित है कि वे अपने २ सम्प्रदाय के नियमानुसार तिलक चिह्न धारणादि बाह्य कृत्य करते हुए भी शुद्ध हृदय से उस २ नाम रूप विशिष्ट ईश्वर की भक्ति बड़ी लाग के साथ करें तभी उनका इष्ट सिद्ध होगा। प्रयोजन यह कि ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक के लिये भी सनातन धर्म के ग्रन्थों में प्रमाण अवश्य मिलेंगे। हम यह पहिले भी लिख चुके हैं कि श्रुति नाम वेद से भिन्न सभी प्रामाणिक ग्रन्थ सामान्यतया स्मृति पदवाच्य हैं। जिस के लिये कई उदाहरण भी दे चुके हैं। तब मनुयाज्ञवल्क्यादि खास २ थोड़े से पुस्तकों को ही स्मृति मानकर झगड़ा उठाना यह गोस्वामी की विचित्र बुद्धि का कारण है। अब रहा निर्णयसिन्धु का सतनजा बताना सो यह भी उन की कम समझ का कारण है। जब कि वेदरूप श्रुति से भिन्न सभी पुस्तकों का स्मृति होना युक्ति प्रमाण से सिद्ध है और सभी विद्वानों के सम्मत है तब उन्ही ग्रन्थों के प्रमाणों से विवादास्पद विषयों की व्यवस्था रूप निर्णय सिन्धु पुस्तक स्मृति से भिन्न और क्या कहा जा सकता है। सतनजा का दृष्टान्त इस में ठीक घट सकता है परन्तु समझ का भेद है। जैसे सतनजा में सातो नाज ही हैं अन्नत्व सामान्य सब में एक ही है सभी अन्नों से जीवन की रक्षा होती है। वैसे ही वेद से भिन्न सभी प्रामाणिक शिष्ट ग्रन्थों में स्मृतित्व सामान्य है। सब स्मृतियां मनुष्य की इष्ट साधक हैं। जैसे अन्नों का संग्रह विष वा मट्टी नहीं कहाता किन्तु अन्न ही कहाता है वा मनुष्य पश्वादि का समुदाय भी मनुष्य पश्वादि ही रहते हैं वैसे ही स्मृतियों का संग्रह रूप निर्णयसिन्धु भी स्मृति ही रहेगा।

गोस्वामी—विना दर्शन शास्त्र के कोई मत नहीं ठहरता है। जब स्मार्त्त एक धर्म माना गया है तब उसका दर्शन होना चाहिये। वैष्णव धर्म की प्रति

योगिता ही इसका अभ्यास है अतः वैष्णव सिद्धान्त के विरुद्ध मायावाद दर्शन को इन्हों ने अपना दर्शन मान लिया।

अब तक वैष्णव धर्म से एकादशी और तिर्यक् पुण्ड्र पर झगड़ा था अब जगत् को मिथ्या कहकर भी झगड़ने लगे। जिन स्मृतियों को लेकर स्मार्त्त बनने का दावा करते हैं उन में तो कहीं अद्वयवाद का नाम भी नहीं है। न कहीं जगत् को मिथ्या कहा है। पर स्मार्त्त भाई तो अब अद्वयवाद का झंडा उड़ाने ही लगे।

समाधान—गोस्वामी का यह भी लिखना मिथ्या है। क्योंकि न अब तक स्मार्त्त लोगों की ओर से झगड़ा था और न अब झगड़ा है। एकादशी के व्रत को वैष्णव लोग तो मानते ही हैं पर स्मार्त्त लोग भी मानते और करते हैं तब झगड़ा ही क्या है?। रहा तिर्यक् पुण्ड्र तथा भस्म धारण जिस को हम पूर्वमें वेदानुकूल सिद्ध कर चुके हैं। उस को वेदानुकूल होने से स्मार्त्त लोग तो ठीक २ मानते हैं तब उस में झगड़ा ही क्या रहा। और स्मार्त्त लोग ऊर्ध्व पुण्ड्रादि को भी बुरा नहीं कहते क्योंकि उन के यहां पांच देवताओं में विष्णु भगवान् भी उपास्य देव हैं। परन्तु वैष्णव लोग शिवरात्रि और नवदुर्गादि के व्रतों को तथा तिर्यक् पुण्ड्र को शास्त्रानुकूल कर्त्तव्य नहीं मानते इस लिये इन विषयों में जो कुछ झगड़ा है भी तो वह गोस्वामी जैसे वैष्णवों की ओर से है।

स्मार्त्त कोई मत ऐसा नहीं है जैसे कि वैष्णवादि मत हैं किन्तु वेदानुकूल श्रुति से भिन्न वेदाङ्ग आदि सभी ग्रन्थ स्मृति हैं उन्हीं सब के मानने वाले वेद मतानुयायी सब स्मार्त्त कहाते हैं। वास्तव में स्मार्त्त शब्द तो अति प्राचीन है परन्तु जब तक सभी वेद मतानुयायी मनुष्य श्रुत्यर्थानुसारिणी स्मृतियों के मानने वाले थे तब तक मनुष्यों को स्मार्त्त कहने का व्यवहार नहीं था किन्तु जब से श्री वैष्णवादि कई मत स्मृतियों से विरुद्ध प्रचरित हुये तब उन विरुद्ध मतों से अपने को पृथक् प्रसिद्ध करने के लिये स्मार्त्त नाम से व्यवहार चलादिया है। जब स्मार्त्त कहने से सर्वसाधारण वेदमतानुयायी समझे जाते हैं और वास्तव में वेही लोग ठीक २ सनातनधर्मी हैं तब स्मार्त्त कोई मत कैसे कहा जायगा?। और यदि कहा भी जाय तो वेद मत कहावेगा। तब उस के दर्शन की यदि आवश्यकता है तो वह दर्शन सनातन काल से ही मीमांसा नाम से प्रसिद्ध है। उस के दो भेद हैं श्रौतनाम श्रुति सम्बन्धी विषयों की मीमांसा तथा स्मार्त्त मीमांसा स्मृतियों सम्बन्धी विषयों पर होती

है। श्रौतमीमांसा के पूर्व उत्तर दो भेद हैं। उन में यज्ञादि कर्मकाण्ड सम्बन्धी पूर्व मीमांसा है तथा उपासना और ज्ञान सम्बन्धी उत्तरमीमांसा है। क्या हमारे गोस्वामी को अब तक इतना भी बोध नहीं हुआ कि वे स्मृतियों का दर्शन पूर्व मीमांसा समझ लेते। मीमांसा सम्बन्धी सभी विचार १–विधि २–अर्थवाद तीसरा ३–अनुवाद इन तीन प्रकार के वाक्यों का विभाग लेकर प्रवृत्त होता है। सो जैसे ये तीनों प्रकार श्रौत विषयों में हैं वैसे ही स्मार्त्त-विषयों में भी ये सब हैं। गो स्वामी जी! न्याय दर्शन अ० २ आ०१ सूत्र ६४ पर महर्षि वात्स्यायन का कथन आंख खोल कर देखिये–

लोकेऽपि च विधिरर्थवादोऽनुवादइति च त्रिविधं वाक्यम्। ओदनं पचेदिति विधिवाक्यम्। अर्थवादवाक्यमायुर्वर्चो बलं सुखं प्रतिभानं चान्ने प्रतिष्ठितम्। अनुवादः पचतुपचतु भवानित्यभ्यासः॥

अर्थ–लोक में भी विधि अर्थवाद और अनुवाद ये तीन प्रकार के ही वाक्य वेद के ही तुल्य होते हैं। जैसे–भात पकावे यह विधि है क्योंकि आयु तेज बल सुख और स्मरण शक्ति अन्न में स्थित है यह प्रशंसा रूप अर्थवाद तथा आप पकाइये पकाइये यह अनुवाद वाक्य है। तीन प्रकार का विधि चार प्रकार का अर्थवाद और दो प्रकार का अनुवाद वेद के तुल्य ही लौकिक भी है। (ऋतौभार्यामुपेयात्) यह वेद वाक्य तथा (ऋतुकालाभिगामीस्यात्) यह स्मृति वाक्य है। दोनों समानार्थ हैं। अपूर्व विधि नियम विधि और परिसंख्या विधि ये विधि वाक्यों के तीन भेद वेद के तुल्य स्मृतियों में भी ज्यों के त्यों हैं।

मालूम होता है कि गोस्वामी मधु सूदन जी ने मनु याज्ञ वल्क्यादि स्मृतियों के नाम ही सुने हैं किन्तु अच्छे प्रकार उनको देखा नहीं है। याज्ञवल्क्य स्मृति पर मिताक्षरा टीका देखी होती तो स्पष्टतया जान लेते कि मीमांसा दर्शन का ही अवान्तर भेद स्मृतियां हैं। जब मीमांसा दर्शन ही श्रुतिस्मृति दोनों का दर्शन युक्ति प्रमाण दोनों से सिद्ध है तब स्मृतियों का कोई दर्शन ही नहीं यह गोस्वामी का कितना बड़ा अज्ञान है?। तथा यह और भी विलक्षण बात है कि "वैष्णव सिद्धान्त के विरुद्ध मायावाद दर्शन को इन्हों ने अपना दर्शन मान लिया" सो बात भी ठीक नहीं क्यों कि न्याय योग सांख्य मीमांसा दर्शन भी स्मार्त्त लोगों के ही दर्शन हैं। तब मायावाद को ही स्मार्त्तों ने अपना दर्शन मान लिया यह कैसे? क्या इसमें

कोई प्रमाण है ? अर्थात् यह बात प्रमाण शून्य है। जब स्मृतियों का सिद्धान्त कर्मकाण्ड प्रधान है तो उसका दर्शन वेदान्त कैसे हो सकता है ?। अब रहा अद्वैतवाद का विचार कि " उन में तो कहीं अद्वैतवाद का नाम भी नहीं है। न कहीं जगत् को मिथ्या कहा है " सो यह भी गोस्वामी का कथन मिथ्या है क्यों कि-इतिहास पुराण धर्मशास्त्रादि नामक सभी स्मृतियों में हजारों प्रमाण अद्वैतवाद के लिये विद्यमान हैं।

तस्मादव्यक्तमुत्पन्नं त्रिगुणंद्विजसत्तम।
अव्यक्तंपुरुषेब्रह्मन् निर्गुणेसम्प्रलीयते॥

इति महाभारतादौ। तथा च पुराणेऽपि

अतश्चसंक्षेपमिमंशृणुध्वं नारायणःसर्वमिदंपुराणः।
ससर्गकालेचकरोतिसर्गं संहारकालेचतदत्तिभूयः॥

तथा च भगद्गीतासु

अहंकृत्स्नस्यजगतः प्रभवःप्रलयस्तथा।

तथा च मनुस्मृतौ द्वादशाध्याये

सर्वभूतेषुचात्मानं सर्वभूतानिचात्मनि।
समंपश्यन्नात्मयाजी स्वाराज्यमधिगच्छति॥

तथा शुक्लयजुर्वेदस्य ४०अध्याये मन्त्रः

यस्मिन्त्सर्वाणिभूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्रकोमोहःकःशोक एकत्वमनुपश्यतः॥

अर्थः—उसी ईश्वर से त्रिगुणात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई है वही सब का उपादान है इसी कारण अव्यक्त नामक प्रकृति उसी निर्गुण परमेश्वर में अन्त में लीन हो जाती है। तथा पुराणों में लिखा है कि इस से संक्षेप विचार यह सुनो कि यह सब जगत् नारायण का ही स्वरूप है। वह सृष्टिरचना के समय सब को बनाता और प्रलय के समय सब का भक्षण कर लेता है ? चाहे इसी बात को यों समझो जैसा कि वेद में स्पष्ट कहा है कि (स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु) वह व्यापक परमात्मा प्रजाओं में ओत प्रोत हो रहा है कि जैसे कपड़े में सूत ओत प्रोत होता है। कपड़ा सूत से भिन्न कुछ नहीं वैसे ही ईश्वर से भिन्न यह जगत् कुछ नहीं है। तथा भगवद्गीता में कहा है कि-सब जगत् की मुझ से ही उत्पत्ति और मुझ में ही प्रलय होता है। तथा मनुस्मृति अ० १२ वें में कहा है कि सब भूतों में आत्मा को और सब भूतों को आत्मा में अभेद रूप से सम देखता हुआ आत्मोपासक ज्ञानी निर्वाण मोक्ष को प्राप्त होजाता है। (शेषआगे)

—*—(प्रेरितलेख)—*—

—*○—*—○—मोक्ष साधन—○—*—○*—

धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर जी ने भीष्म जी से मोक्ष का उपाय पूछा है कि हे भगवन् ! कौन सी रीति है जिस का अवलम्बन करके पुरुष मोक्ष के द्वार तक पहुंच सकता है। यह सुन कर भीष्म जी ने उत्तर दिया कि हे पांडुपुत्र जिस प्रकार समुद्र की गति का एक ही मार्ग है एवं मोक्ष का भी एक ही रास्ता है परन्तु सब से प्रथम जो कर्तव्य कर्म है तू उस के अनुष्ठान को सविस्तर श्रवणकर।

क्षमयाक्रोधमुच्छिन्द्यात् कामंसंकल्पवर्जनात् ।
सत्त्वसंसेवनाद्धीरो निन्द्रांञ्चछेत्तुमर्हति ॥ १ ॥
अप्रमादाद्भयंरक्षेच्छ्वासंक्षेत्रज्ञशीलनात् ।
इच्छांद्वेषंचकामंच धैर्येणविनिवर्तयेत् ॥ २ ॥
भ्रमंसंमोहमावर्तमभ्यासाद्विनिवर्तयेत् ।
निन्द्रांचप्रतिभांचैव ज्ञानाभ्यासेनतत्त्ववित् ॥ ३ ॥
उपद्रवांस्तथारोगान् हितजीर्णमिताशनात् ।
लोभंमोहंचसंतोषाद्विषयांस्तत्त्वदर्शनात् ॥ ४ ॥
अनुक्रोशादधर्मंच जयेद्धर्ममवेक्षया ।
आयत्याचजयेदाशामर्थंसंगविवर्जनात् ॥ ५ ॥
अनित्यत्वेनचस्नेहं क्षुधांयोगेनपण्डितः ।
कारुण्येनात्मनोमानं तृष्णांचपरितोषतः ॥ ६ ॥
उत्थानेनजयेत्तन्द्रा वितर्कंनिश्चयाज्जयेत् ।
मौनेनबहुभाष्यंच शौर्येणचभयंत्यजेत् ॥ ७ ॥
यच्छेद्वाङ्मनसीबुद्ध्या तांयच्छेज्ज्ञानचक्षुषा ।
ज्ञानमात्मावबोधेन यच्छेदात्मानमात्मना ॥ ८ ॥
तदेतदुपशान्तेन बोद्धव्यंशुचिकर्मणा ।
योगदोषान्समुच्छिद्य पञ्चयान्कवयोविदुः ॥ ९ ॥

मुमुक्षु पुरुष को उचित है कि वह क्रोध रूपी वृक्ष को क्षमा के शस्त्र से काट देवे क्यों कि क्रोधी कर्त्तव्याकर्त्तव्य को पहचान नहीं सकता और माता पिता तथा गुरु को भी कुवाच्य बोलने से नहीं टलता अन्य का तो कथन ही क्या। क्रोध ही से तपस्वियों के तप में विघ्न पड़ता है जैसे विश्वामित्र के तप में क्रोध से बाधा पड़ी इससे क्रोध का परित्याग मनुष्य को मौक्तिक बनाने का उत्तम साधन है और किसी ने कहा भी है (करेयस्यक्षमाखड्गो दुर्जनःकिंकरिष्यति) जिस के हाथ में क्षमा की तलवार है दुर्जन उस का क्या करेगा ?। संकल्प के त्याग से कामना को निर्मूल करे क्योंकि श्रीकृष्ण जी ने गीता में कहा भी है कि (संकल्पमूलःकामोवै) निश्चय करके कामना की जड़ संकल्प है, सब से पहिले संकल्प को कल्याणकारी बनाना चाहिये तदनन्तर मुमुक्षु पुरुष कामना का समूलोन्मूलन करे क्योंकि इसी लिये वेद भगवान् में उपदेश है कि (तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु) वह मेरा मन शिवसंकल्प वाला हो अर्थात् सर्वदा हित चिन्तक बना रहे भूल करके भी किसी का अनिष्ट चिन्तन न करे। धीर पुरुष सतोगुण के सेवन से निद्रा रूपी द्रुम को काटे क्यों कि आलस्य प्रत्येक प्रकार की उन्नति को रोकता है। (नास्त्यालस्यसमोरिपुः)इस कथन के अनुसार आलस्य शत्रु बन जाता है, सत् रज,तम, प्रकृति के ये तीन गुण मन के घटीयंत्र के समान परिभ्रमण स्थान हैं रात दिन मन इन तीनों गुणों केविचारों के अन्दर रहता है अर्थात् कभी सतोगुणी कभी तमोगुणी और कभी रजोगुणी ख्याल पैदा होते हैं (अभ्यासेनतुकौन्तेय वैराग्येणचगृह्यते) इस गीता के उपदेश के अनुसार चित्तवृत्ति को निरन्तर सतोगुण में रखना परम श्रेय के देने वाला है। कर्त्तव्य की सावधानी से भय से बचायो करे अर्थात् यम, नियस के अनुष्ठान से निर्भय होके विचरे। चौरादि का भय भी भूल में रहने पर ही होता है। श्वास की गति को क्षेत्रज्ञ के अनुशीलन से सार्थक करे अर्थात् विषय भोग में श्वास की गति को न खराब करे दोनों स्वरों के साथ राकार मकार का उच्चारण करता हुआ श्वास की गति को कृतकृत्य करे। इच्छा, द्वेष, और काम के वेग को धैर्य से शान्त करे। भ्रम, संमोह,और आवर्त्त को कम करने के अभ्यास से क्षीण करे।निद्रा और चित्त की अनेक संसारिणी वृत्तियों को ज्ञान के अभ्यास से रोके। सुपक्व हितकारक परिमित भोजन से उपद्रव तथा रोगों का शमन करे अर्थात् अधर्म से कमाये हुये राजस, तामस, कच्चे तथा अधिक

भोजन को कदापि न करे। अधर्म से कमाया हुआ स्वादिष्ठ स्वर्ण के पात्र में पड़ा हुआ और अनेक व्यंजनों वाला भी भोजन वैसा आनन्द देने वाला नहीं होता जैसा कि केले के पत्रों पर पड़ा हुआ स्वाद रहित धर्म से कमाया हुआ ओदन होता है। लोभ मोह को संतोष से वशीभूत करे क्योंकि लोभ ही पापों का कारण है (लोभान्मोहश्चनाशश्च लोभःपापस्यकारणम्) मोह से निवृत्ति होने के लिये राजा निर्मोही और उस के संबन्धियों के जीवन चरित्र का अनुसरण करे। एक दिन राजा निर्मोही का पुत्र बन में भ्रमण करने के लिये गया वहां उस ने क्या देखा कि एक तपस्वी परमात्मा के ध्यान में बैठे हुये हैं उन के पास प्रणाम कर जा बैठा, तपस्वी ने उसे पूछा हे युवा पुरुष तू कौन है और तुम्हारे माता पिता तथा तुम्हारा क्या नाम है उसने सविनय उत्तर दिया कि महाराज ! मैं निर्मोही माता पिता का युवराज पुत्र और मोह रहित भार्या का अमोही पति हूं, तपस्वी राजपुत्र के वचन को सुन कर हंस कर बोले कि तुम, और तुम्हारे संबन्धी वास्तव में निर्मोही हैं या नाम मात्र के निर्मोही हैं, राजपुत्र बोला कि आप की कृपा से हम सब संबन्धि मोह से रहित हैं यदि आप को विश्वास न हो तो परीक्षा करलें यह सुन कर तपस्वी राजा निर्मोही से मिलने के लिये चले जब राजद्वार पर पहुंचे तब द्वारपाल ने खड़े होकर उन का स्वागत किया और प्रार्थना की कि आप का आना किस निमित्त को लेकर हुआ, तपस्वी ने उत्तर दिया कि तुम्हारे राजपुत्र को बन में सिंह ने खालिया है मैं उस की खबर देने को आया हूं यह सुन कर द्वारपाल बोला कि—

क्वगताःपृथिवीपालाः ससैन्यबलवाहनाः।
वियोगसाक्षिणीयेषां भूमिरद्यापितिष्ठति ॥ १० ॥
कायःसंनिहितापायः संपदःपदमापदाम्।
समागमाःसापगमाः सर्वमुत्पादिभंगुरम् ॥ ११ ॥

सेना के चार प्रकार केवल और हाथी घोड़े आदि से युक्त सगर दिलीपादि राजा कहां गये जिन के वियोग की साक्षी देने वाली पृथिवी आज तक विद्यमान है। और दूसरे नाश शरीर के साथ है, संपत्तियां आपत्तियों का स्थान हैं, समागम के साथ वियोग है, सब उत्पन्न होने वाली वस्तु नष्ट होने वाली है अतः यदि हमारा युवराज मर गया है तो इस में आश्चर्य ही क्या है आप ने

केवल इसी बात के लिये आने से दुःख क्यों उठाया ? । यह सुनकर तपस्वी की आंखें खुल गईं कि जिस के नौकर ऐसे विरागी हैं वे स्वयं निर्मोही क्यों न होंगे परन्तु तो भी राजा के पास जाकर अवश्य परीक्षा करूं। राजा निर्मोही तपस्वी को देखते ही उठ खड़े हुए और कहने लगे कि आज आप ने अपने शुभागमन से मुझे कृतार्थ कर दिया अपने आगमन कारण से अनुगृहीत कीजिये, तपस्वी बोले कि राजन् क्या कहूं तेरे पुत्र को तो वन में सिंह ने खा लिया है यह सुनकर राजा ने बड़ी शान्ति के साथ कहा—

अनित्यंयौवनंरूपं जीवितंद्रव्यसंचयः। ऐश्वर्यंप्रियसंवासो मुह्येत्तत्रनपण्डितः॥१२॥
यथाकाष्ठंचकाष्ठंच समेयातांमहोदधौ। समेत्यचव्यपेयातां तद्वद्भूतसमागमः॥१३॥

यौवन, रूप, जीना, धनसंचय, ऐश्वर्य तथा स्त्री, पुत्रादिक प्यारों से बोल चाल रहना सहना, ये सब अनित्य हैं ठहरने वाले नहीं इन में बुद्धिमान् को चाहिये कि मोह न करे, वास्तव में जिस प्रकार समुद्र में दो काष्ठ के लट्ठे अपने आप बहते हुये चले जाते हैं और मिल कर फिर अलग हो जाते हैं इसी प्रकार संसार में प्राणियों का स्त्री पुत्र आदि संबन्धियों के साथ मिलना है, इस लिये उसके मर जाने का कोई आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो यह है कि आप जैसे तपस्वी को भी मोहने घेर लिया॥

तपस्वी फिर राजा निर्मोही की स्त्री के पास जाकर बोले कि तेरे पुत्र को सिंह ने खालिया है विचार से भरी राजपत्नी निम्न लिखित प्रकार से उत्तर देती है—

क्रोडीकरोतिप्रथमंयथाजातमनित्यता। धात्रीयजननीपश्चात्तथाशोकस्यकःक्रमः॥१४
यथाहिपथिकःकश्चिच्छायामाश्रित्यतिष्ठति। विश्रम्यपुनर्गच्छेत्तद्वद्भूतसमागमः॥१५

सब से प्रथम प्राणी के उत्पन्न होते ही उसको मृत्यु ग्रहण करती है और धाय के समान माता तो पीछे से गोद में लेती है जैसे कोई पथिक रास्ते में छाया का आश्रय लेकर बैठ जाता है और विश्राम करके फिर वहां से चला जाता है वैसे ही इस संसार में प्राणियों का मिलना जुलना है इस लिये इस में शोक की कौन सी बात है शोक तो इस बात पर है कि आप वन में रहते हुए भी मोहमाया के बन्धन में आगये तदनन्तर तपस्वी समुचित उत्तर पाकर युवराज की पत्नी के पास आकर बोले कि तेरे प्राणपति को सिंह ने मार डाला वह सुन कर धैर्य से इस प्रकार कहने लगी—

नायमत्यन्तसंवासो लभ्यतेयेनकेनचित्। अपिस्वेनशरीरेण किमुतान्येनकेनचित्॥
संयोगोहिवियोगस्य संसूचयतिसंभवम्। अनतिक्रमणीयस्य जन्ममृत्योरिवागमम्॥

संसार में किसी प्राणी को अपने शरीर का भी बहुत काल तक साथ नहीं मिलता, स्वामी, पुत्रादिकों का तो कहना ही क्या है। जन्म जैसे अवश्य होने वाली मृत्यु के आगमन को जताता है वैसे ही संयोग अवश्य होने वाले वियोग का होना जताता है अतः यदि स्वामी से वियोग होगया है तो कोई चिन्ता नहीं। इस प्रकार तपस्वी उस युवराज के संबन्धियों की परीक्षा करके वन में उस के पास पहुंचे और कहने लगे कि तुम्हारे सब संबंधि मृत होगये हैं, राज पुत्र ने बड़े धैर्य से उत्तर दिया कि मुझे उनके मरजाने की चिन्ता नहीं है परन्तु केवल इस बात की चिन्ता है कि वे आप के जाने तक जीवित न रहे जिस से आप उन के निर्मोही होने की परीक्षा करते उस के इन वचनों को सुनकर तपस्वी को निश्चय होगया कि निःसंदेह यह परिवार मोह से रहित है। दूसरे दिन तपस्वी युवराज को साथ लेकर राजा निर्मोही के पास पहुंचे तब राजा और रानी ने पुत्र के मस्तक को चुंबन करके बहुत प्यार किया यह देख तपस्वी ने कहा कि आप तो निर्मोही हैं अब पुत्र से प्यार क्यों करते हो। राजा बोला कि निर्मोही होने का यह तात्पर्य्य नहीं है कि संसार के योग्य व्यवहार को छोड़ दिया जावे बल्कि राजा जनक की तरह सब संबन्धियों से वितृष्ण होकर वर्ता जावे रागी पुरुष के लिये वन में जाकर भी विशेष लाभ नहीं होता क्योंकि—

वनेऽपिदोषाःप्रभवन्तिरागिणाम्। गृहेऽपिपञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः॥
अकुत्सितेकर्मणियः प्रवर्त्तते। निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्॥

यह लेख—कपिलोपदेश की छाया को लेकर लिखा गया है (शेष आगे)

तुलारामशास्त्री—अम्बाला छावनी

महिमा घटी समुद्र की, रावण बसे परोस।
विश्वनाथ मन में करे, विद्वत्ता की होस॥

पाठक गण ! हम ने २० दिसम्बर सन् १९०५ ईसवी को मथुरा आर्यसमाज के मन्त्री महाशय से १०५ प्रश्न किये थे परन्तु शोक का स्थल है कि अविद्याऽवश मन्त्री महोदय ने उनका कुछ भी उत्तर न दे कर आर्यसमाज के एक सभासद् के नाम से वेद प्रकाश में एक लेख " पण्डित सभा की सभ्यता " शीर्षक ऊट पटांग छपा कर अपने विपुल वैदिक आर्य धर्म का परिचय दिया है यह तो

हम पहले ही जानते थे कि मियां जी की दौड़ मसजिद तक वस मथुरा आर्य समाज के मन्त्री महाशय ने एक सभासद् द्वारा वेद प्रकाश में लेख प्रकाशित कराकर अपने पाण्डित्य की इति श्री की है। आपने (स्वयं) मैदान में न आ कर एक सभासद् का आश्रय लेकर टट्टी की ओट में चोट चलाई है अस्तु हम ऐसे वाहियात लेख का कदापि उत्तर न देते क्योंकि जैसे से तैसी ही सलामी नहीं करना चाहते थे परन्तु (शठंप्रति शठं कुर्यात्) इस वाक्यानुसार कतिपय मित्रों के अनुरोध से कुछ हमको लिखना ही पड़ा है। लेखक महोदय ने "पंडित सभा की सभ्यता" लिखी है परन्तु उस ने स्वयं सभ्यता का पालन कहां तक किया है यह तो उस के लेख से ही स्पष्ट विदित होता है। लेखक महाशय ने सभ्यता का संकर कर डाला है ऐसे २ वाहियात शब्द लिखे हैं कि जिन को पढ़कर आर्यसमाजियों के स्वभाव का खूब अच्छा पता मिलता है। लेखक महाशय हम से पूंछते हैं कि तुम कौन धर्म के अनुयायी हो। महाशय हम सनातन धर्मावलम्बी वैष्णव धर्म के भक्त हैं नकि आप की भांति तीन में न तेरह में "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुनवा जोड़ा" मन माने कल्पित धर्म के अनुयायी हो बैठे हम को न तो कुछ वेद में शङ्का है न पञ्चमहायज्ञ में शङ्का है परन्तु आर्यसमाजियों की विद्वत्ता का नमूना देखना चाहते हैं। सो आप के लेख से ही विदित होगया कि आप को संस्कृत का काला अक्षर भैंस बराबर ठीक तो है आप उसी धर्म के अनुयायी हैं जिस में कि वेदों से तार रेल निकाले गये हैं। दुःख का स्थल है कि आज आर्यसमाज के नेता स्वामी दयानन्द सरस्वती जीते न रहे नहीं तो मोटोकार वाईसिकिल की भी उत्पत्ति वेदों से ही सिद्ध कर देते। महाशय जी हम गायत्री का फल जानते हैं और गायत्री को मानते हैं परन्तु आप से इस कारण पूछा था कि कहीं आप आचमन करने से जैसे कफ की शुद्धि मानते हैं वैसे ही गायत्री का भी कुछ ऊट पटांग अर्थ वा फल न मान बैठे हों अथवा जिस प्रकार आप हवन से केवल वायु शुद्धि ही मान बैठे हैं ठीक उसी प्रकार आप ने कहीं धर्म के लक्षण न समझ रक्खे हों। सो हमारा अनुमान ठीक ही हुआ क्योंकि कुछ प्रश्नोत्तर न लिख कर बेसुर बेतान कुम्भकर्ण केसे कान राग आलापे हैं। पाठकगण! आप स्वयं न्याय कीजिये यह कहां का उत्तर है कि आग तो लग रही है और दीपक राग गाने लगे महाशय जी नारी शब्द की व्युत्पत्ति पूछने का कारण यह है कि आप मन माने नारी शब्द के

अर्थ कल्पित कर मिथ्या विधवा विवाह का ढोल पीटते हैं क्या खूब आप लिखते हैं १०५ प्रश्नों का उत्तर ४७।५० पृष्ठों में छाप कर बांटना व्यर्थ है ठीक है जब ईश्वर की कृपा से आप के ऊपर सरस्वती और लक्ष्मी की कृपा ही नहीं है तब प्रश्नों का उत्तर कैसे छापोगे आप का इतना ही पुरुषार्थ बहुत है जो वेदप्रकाश में कुछ ऊटपटांग लिख तो दिया नहीं तो " मौनं सर्वार्थसाधनम् " यही आप का सदैव से लक्ष्य है लेखक महाशय आप ने उटङ्कर शब्द खूब गढ़ डाला है क्यों न गढ़ डालें जब कि प्रतिज्ञा को प्रतिजा और यज्ञ को जज यवन को जबन बोलते हैं ठीक दयानन्दियों की दशा ऐसी ही है " कठिन विपत् हम पे परी तुलसी राखो लाज। विश्व पुकारत बाय तुहि डूबो जात समाज„ आर्यसमाजी रात दिन हल्ला किया करते हैं कि वेद पढ़ो २ परन्तु स्वयं वेद पढ़ना पढ़ाना वा वेदों का जानना अभीष्ट नहीं है। विधवा विवाह की डींग मारते हैं परन्तु अपने यहां की विधवाओं की न जाने शादी क्यों नहीं करते हैं। गुण कर्म से वर्णव्यवस्था मान कर भी दुकान दारी नौकरी करते हुए भी शर्मा शब्द की मिट्टी खराब करते हैं ठीक दयानन्दियों का मत ऐसा ही है (दूर के ढोल सुहावने) लेखक महाशय ने सिद्धान्त और मनोरमा का उपहास ठीक वैसा ही किया जैसे कि लोमड़ी अङ्गूरोंको खट्टे कह कर चली गई थी भला मनोरमा सिद्धान्त के जन्म भर दर्शन भीनहीं किये अब जो नाम कहीं से सुन लिया तो उस को भी लिखने से बाज क्यों आवें सच है " अधजल गगरी छलकत जांय " हम को भी उपहास में एतन्मात्र कहना है कि वेदप्रकाश ने भी इस लेख को ठीक इस कहावतानुसार छापा है " अन्धा बांटे रेवड़ी फिर फिर के अपने को दे " हाय पक्ष ऐसा ही होता है उत्तर देने की शक्ति तो है ही नहीं फिर समय का बहाना बनाना किसी ने सच कहा है " नाच न जाने आंगन टेढ़ा „ क्या आर्यसमाज का यह भी नियम है कि अपनी प्रतिष्ठा के हेतु मिथ्या भाषण करना लेखक महाशय ने लिखा है कि पण्डित सभा और दामोदरप्रसाद का बाल विधवा विवाह यह विचार चल रहा था और पण्डित सभा बाल विधवा विवाह स्वीकार कर चुकी महाशय जी ये क्या आप स्वप्न देख रहे हैं पण्डितसभा तो आप को शास्त्रार्थ के लिये वेङ्कटेश्वर ब्राह्मणसर्वस्वादि पत्रों में ललकार चुकी है शास्त्रार्थ क्यों नहीं करते ॥

पं० छगनलाल मथुरा

आ० समाजस्थ महाशयों से निवेदन ॥

हे महाशयो आर्यसमाज का चौथा नियम यह है कि सत्य के ग्रहण और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये । परन्तु बड़े २ बुद्धिमान् समाजस्थ महाशय सत्यार्थप्रकाशादि में प्रत्यक्ष शास्त्र विरुद्ध महा अशुद्ध सर्वथा असत्य और असभंजसादि लेख देख कर उनका त्याग तो नहीं करते किन्तु आग्रह ही करते हैं । यदि उक्त नियमानुसार सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करें तो बहुत ही उत्तम हो । सत्यार्थप्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ २०५ में लिखा है कि "ब्राह्मण पुस्तकों में बहुत से ऋषि महर्षि और राजादि के इतिहास लिखे हैं और इतिहास जिसका हो उसके जन्म के पश्चात् लिखा जाता है वह ग्रंथ भी उसके जन्मे पश्चात् होता है वेदों में किसी का इतिहास नहीं । किसी मनुष्य की संज्ञा वा विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं इति।" हमने इसके उत्तर में ब्राह्मणसर्वस्व भाग १ मासाङ्क ५।६ में ऋग्वेद से त्रित ऋषि और देवापि शंतनुआदि के ५ इतिहास निरुक्तकार की व्याख्या सहित छपवाये थे इसी प्रकार यजुर्वेद और अथर्ववेद से अनेक ऋषि महर्षि आदि के नाम तथा इतिहास दयानन्द के मूल सिद्धान्त की हानि नामक पुस्तक में मुद्रित कराये परन्तु यह न सुना कि समाजस्थ महाशयों ने हमारे सत्य लेख का ग्रहण और सत्यार्थप्रकाश के असत्य का त्याग किया हो।वस्तुतः चारों संहिताओं में अनेक ऋषि महर्षि आदि के नाम और इतिहास स्पष्ट लिखे हैं बुद्धिमानों को चाहिये कि पक्षपात को छोड़कर यथार्थ निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करें अन्त में ऋग्वेद संहिता का एक मंत्र सायणाचार्य के भाष्य तथा निरुक्तकार की व्याख्या सहित लिखते हैं जिसमें पांच महर्षियों के नाम प्रत्यक्ष हैं ॥ तथाहि-

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदोविरूपवत् ।
अङ्गिरस्वन्महिव्रतप्रस्कण्वस्यश्रुधीहवम् ॥

ऋग्वेद मं० १ अ० ९ सू० ४५ मं० ३

भाष्यम्-हे महिव्रत प्रभूतकर्मन् जातवेदोग्ने प्रस्कण्वस्य कण्वपुत्रस्य महर्षेर्हवमाह्वानं श्रुधि शृणु तत्र चत्वारो दृष्टान्ताः प्रियमेधात्रिविरूपाङ्गिरोनामका एतेषामाह्वानं यथा शृणोषि तद्वत् । अत्रनिरुक्तम्-प्रियमेधः प्रिया अस्य मेधा यथैतेषामृषीणामेवं प्रस्कण्वस्य शृणु ह्वानं प्रस्कण्वः कण्वस्य पुत्रः कण्वप्रभवो यथा प्राग्रमिति विरूपो नानारूपो महिव्रतो महाव्रत इतिच ॥

अर्थात् हे महित्रत प्रभूतकर्मन् जातवेदोग्ने कण्वपुत्र प्रस्कण्व महर्षि के हवम् नाम आह्वान को सुनो जैसे प्रियमेध अत्रि विरूप और अंगिरा के आह्वान को सुनाहै। निरुक्त का प्रमाण ऊपर संस्कृत में लिखा गया है। वेद के उक्त एक ही मन्त्र में प्रियमेधादि पांच महर्षियों के नाम स्पष्ट हैं। निरुक्तकार और सायणाचार्य ने भी अपने २ व्याख्यान में उक्त नाम महर्षियों ही के लिखे हैं। अब बुद्धिमान् लोग धर्म से कहें कि सत्यार्थप्रकाश का वह लेख कि किसी मनुष्य की संज्ञा वेदों में नहीं सर्वथा असत्य नहीं तो क्या है?। इस के अतिरिक्त दयानन्द जीने अपने बनाये यजुर्वेद भाष्य के पृष्ठ ११०९ में श्रुति की व्याख्या में वामदेव ऋषि लिखा है इस से भी सत्यार्थप्रकाश का पूर्वोक्त लेख असत्य ही ठहरा सज्जनों को सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना अवश्य उचित है ॥

जगन्नाथ दास मुरादाबाद

दयानन्द जी की भूल

सत्यार्थ प्रकाश मुद्रित सन् १८८४ के पृष्ठ ४९० पर लिखा है कि "सूर्य से कुन्ती का गर्भवती होना भी पुराणों में असंभव लिखा है ऐसी २ बातों को आंख के अंधे गांठ के पूरे लोग मानकर भ्रमजाल में गिरते हैं इति।" स्वामी जी का यह लेख सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है देखिये महाभाष्य अध्याय ४ पाद १ के वार्त्तिक में लिखा है–(सूर्याद्देवतायां चाब्वक्तव्यः। सूर्यस्य स्त्री सूर्या देवतायामिति किमर्थम्। सूरी)॥ सिद्धान्त कौमुदी में यह लेख और भी स्पष्ट है तथाहि (सूर्याद्देवतायांचाब्वाच्यः। सूर्यस्य स्त्री देवता सूर्या। देवतायांकिम्। सूरी कुन्ती मानुषीयम्)॥ अभिप्राय यह हुआ कि सूर्य की देवता स्त्री का नाम सूर्या है और मानुषी का सूरी अर्थात् कुन्ती है शब्द कल्पद्रुम में सूरी शब्द का अर्थ कुन्ती ही लिखा है पूर्वोक्त लेख से सम्यक् सिद्ध हो गया कि कुन्ती सूर्य की स्त्री है फिर उसका सूर्य से गर्भवती होना असंभव कैसे होसकता है?। किन्तु संभव ही है क्योंकि जो जिस की स्त्री होती है वह अपने पति से गर्भवती होती ही है। और शास्त्र विरुद्ध झूठी कपोल कल्पना करने वालों का भ्रमजाल में गिरना स्पष्ट सिद्ध है।

पण्डित–आत्माराम कुरुक्षेत्री

○+○*○शोक शोक महाशोक○*○+○

लिखते हृदय विदीर्ण हो जाता है हमारे कनिष्ठ भ्राता बाबू चन्द्रहरि प्रसाद सिंह पच्चीस वर्ष की अवस्था में परलोक वासी होगये। अयोध्या जी

झूला देखने गये थे भाद्र कृष्ण परिवा को मकान पर आये और कृष्ण चौथि शुक्रवार तारीख़ १८ अगस्त को प्रातःकाल से महामारी (हैजा) के जाल में पड़ गये उसी समय से यथा शक्ति दान पूजा औषध करना आरम्भ हुआ डाक्टर साहब भी बुलाये गये परन्तु अभाग्य वश कुछ लाभ नहीं हुआ शोक भाद्रपद कृष्ण चतुर्थी शनिवार ता० १९ । ८ को दस बजे रात्रि को समस्त कुटुम्ब को रुलाते हुये शोक सागर में डुबा कर हमेशा के लिये संसार से प्रस्थान कर गये इन की इतनी कम अवस्था होने पर भी धर्म में अच्छी रुचि थी दोनों समय संध्या और पूजा और धर्म ही का चरचा इसी में रहते थे और आप का ब्राह्मण सर्वस्व जब आता था तब अत्यन्त प्रीति और तन मन से उस के देखने सुनने में लगे रहते थे जब तक दूसरा अङ्क नहीं आता था तब तक उसी का चरचा और देखना और आप की प्रशंसा बड़े हर्ष और उत्साह से करते थे मैं आशा करता हूं कि इन का नाम आप को भी भूला न होगा क्यों कि बहुत से विषयों में इनका पत्र आप के पास आया जाया करता था वा अपनी बहुत सी शङ्का आप के द्वारा निवृत्त किया करते थे। अब बहुत लेख मैं बढ़ाया नहीं चाहता और आशा करता हूं की अपने अमूल्य पत्र में स्थान देकर कृतार्थ कीजियेगा । इन की स्त्री की अवस्था अभी बीस वर्ष की है वो दो वर्ष का एक पुत्र है आप लोगों के प्रसाद से ईश्वर पुत्र को दीर्घ जीवी करे उसी को देख कर हम लोगों को भी कुछ सन्तोष होता है नहीं तो हम लोगों के दुःख और शोक का वारापार नहीं है ॥

बाबू कोटेश्व प्रसाद सिंह

ग्राम-मरवटिया-पोष्ट वो जिला वस्ती

○○* कोहाट में शास्त्रार्थ *○*○*

६ नवम्बर १९०५ को कोहाट में आर्य्यसमाज के वार्षिकोत्सव पर पं० राजाराम समाजी तथा पं० मणिराम शास्त्री जी का सनातनधर्म्म सभा की तरफ से बड़ी धूम धाम के साथ ५ बजे सन्ध्या से लेकर रात्रि के ८ बज कर ३० मिनट तक अर्थात् साढ़े तीन ३॥ घंटे तक शास्त्रार्थ हुआ.॥

प्रश्न सनातनधर्म्म सभा की ओर से था-सनातनधर्म्म सभा प्रतिक्षण उस मत के साथ शास्त्रार्थ करने के लिये उद्यत है जो मत वेदों को दृढ़ रीति से मानता हो क्या आर्य्यसमाज वेदों को मानता है ? यदि मानता है तो अपने माने हुये वेद में से १७ संस्कार जो दयानन्द की संस्कारविधि में पाये जाते हैं

सविधि साङ्गा मन्त्र दिखलावे। अन्यथा आर्यसामाज वेद का नाम पुकारकर लोगों को क्यों पतित करना चाहता है–

उत्तर–पं० राजा राम जी का यह था कि मूर्ति पूजा श्राद्ध आदि विषयों पर शास्त्रार्थ होना चाहिये। बहुत सी बातें करते रहे छलांग कूद मारते रहे कि किसी तरह हमारा गला इस विषय से छूट जावे। मगर सनातनधर्म्म सभा के शास्त्री जी कब उन को इधर उधर जाने देते थे वह तो उन के तमाम धर्म्म कर्म्म को उन के माने हुये वेद से विरुद्ध सिद्ध कर रहे थे और पुकार कर कहते थे–कि आर्यसमाज के सब मन्तव्य अर्थात् संस्कार नियोग, सत्यार्थ प्रकाश अरु मुक्ति पक्ष सब वेद विरुद्ध हैं।

जब बहुत ही भरी पबलिक में जिस में हिन्दू मुसलमान ईसाई भांति भांति के सज्जन उपस्थित थे–पं० राजा राम जी अति लज्जित हुये और इधर उधर छलांग कूद भी न मार सके, तब संस्कारविधि का १ मन्त्र गर्भाधान का पढ़ा वह मन्त्र यह है।

विष्णुर्योनिंकल्पयतु त्वष्टारूपाणिपिंशतु।
आसिञ्चतुप्रजापतिर्धातागर्भंदधातुते ॥

यह मन्त्र पढ़ा और कहा कि प्रजापति जो शौहर सो गर्भ को करे यही आज्ञा मन्त्र में है ॥

पं० जी की इस बुद्धि पर शोक किया गया और अमर कोष से निकाल कर बताया गया कि प्रजापति का अर्थ विधाता है शौहर नहीं–परन्तु पं० राजाराम जी लोगों के समक्ष हार गये और पराजय स्थानापन्न प्राप्त हुये हुए ही कह उठे कि यह कोष जैनियों का है–

शोक है पं० जी की बुद्धि पर कोष में क्या जैनीपना। लीजिये–इसी मन्त्र का बृहदारण्यक उपनिषद् से भी प्रजापतिः का अर्थ विराडात्मा सिद्ध है यह दिखलाना ही था कि सब के सब मुसलमान ईसाई हिन्दू मात्र सनातन धर्म्म की जय बोल उठे शास्त्रार्थ के प्रभाव से उसी रात्रि को प्रार्थना पत्र सभासद् होने के लिये आये और स्वीकृत किये गये।

अब भी पं० राजाराम जी में कोई शक्ति है तो प्रजापति का अर्थ शौहर करने की तो कृपया जिस पत्र में लेख लिखें हमें सूचित करें और हम जिस में लिखेंगे उन को सूचित करेंगे। ताकि सब को विदित हो ॥—बोलो सनातनधर्म्म की जय

बाबू गुरुदित्ता मल्ल वर्म्मा महामन्त्री

(समाचार)

नैपाल में आर्यसमाजियों की दुर्दशा

एक नैपाली मनुष्य आर्यसमाजियों में सम्मिलित हो गया था और वह नैपाल में दो वर्ष से रहा। इन दो वर्ष के बीच में उस ने अनुमान ५०। ६० मनुष्यों को चोरी से गुप्त आर्यसमाजी बना लिया। अधिक में बढ़ने से यह बात खुल गयी। और नैपाल के अधीश्वर महाराजा साहब को खबर मिल गयी कि यहां भी कोई आ० समाजी पहुंच गया है। पीछे तहकीकात होने पर गुरुदयाल नामक डाढ़ी वाले मास्टर साहब डबल समाजी निकले जो पहिले से अपने को छिपाये हुए थे उन मास्टर साहब को और नैपाली माधवलाल शूद्र को महाराजा साहब के सामने हाजिर किया गया। महाराजा साहब ने उन लोगों का मजहब आदि पूछने के बाद श्री पशुपति नाथ क्या हैं यह प्रश्न किया। इस पर आ० समाजियों ने जवाब दिया कि "शालीक" अर्थात् पाषाण हैं। जभी नैपाली अफ़सरों ने यह आवाज सुनी कि "शालीक हैं" उन लोगों का जी ठिकाने नहीं रहा फिर क्या था मास्टर साहब और माधवलाल पर अनेक लाठी जूती और मुष्टियों की मार पड़ने लगी। मास्टर साहब की पंजाबी डाढी का नाम तक नहीं रहा। डाढ़ी का एक २ बाल तक उखाड़ लिया गया। मास्टर साहब तथा माधवलाल का मार पड़ने से सब शरीर फूल आया लाठी लगने से माथा फूटा लोहू निकला। ऐसी दशा में अगर महाराजा साहब इन लोगों पर दया न करते तो उक्त दोनों समाजियों के प्राण जाने में कुछ देर नहीं थी। थोड़ी देर और पिटने से दोनों मरजाते। महाराजा की दया से उन दोनों अपराधियों के प्राण बच गये। परन्तु विचारे मास्टर साहब को एक दिन रात के भीतर नैपाली सरहद्द छोड़ने का हुक्म हुआ और दो पुलिश उन को पकड़ के ले गये। उन लोगों ने अगले दिन सन्ध्या को ३५ कोश ले जाके मास्टर को छोड़ दिया। यह तो हेडमास्टर जी समाजी का हाल हुआ। अब रहा माधवलाल शूद्र सो जन्म भर के लिये कैद किया गया। और उस का छुआ पानी तक कोई न पीवे यह भी हुक्म हो गया। अर्थात् माधवलाल को चाण्डाल के तुल्य माना जायगा। और इस माधवलाल समाजी ने जिन ५०। ६० नैपाली मनुष्यों को आर्यसमाजी बनाया था उन सब के लिये यही हुक्म हुआ कि ये चांडाल के तुल्य नीच समझे जावें अर्थात् पतित कर दिये गये। उनके साथ कोई व्यवहार द्विज लोग नहीं करेंगे। ये लोग कैद से बच गये। यह सब पशुपति नाथ जी की कृपा है॥

सम्पादकीय सम्मति—पाठक महाशय ! ऊपर लिखा वृत्तान्त सर्वथा सत्य है। लेशमात्र भी उस में मिथ्या नहीं है। हमने यह वृत्तान्त एक प्रामाणिक मनुष्य से सुना। जब इस की सत्यता का प्रमाण हमने चाहा तो ज्ञात हुआ कि यह समाचार नैपाली भाषा के नैपाली अखबार में छप चुका है। नैपाली भाषा को एतद्देशी लोग नहीं समझ सकते हैं। ऊपर के लेख से पाठकों ने जान लिया होगा कि इन आ० समाजियों की कैसी दुर्दशा हुई है। न जाने इन समाजियों ने क्या शोचा है जो सब जगह अपना पग अड़ाना चाहते हैं। ये लोग सब जगह अपना वेद विरुद्ध मत फैलाने से ही देशोन्नति होना समझते हैं यह बड़ी भारी भूल है। वेदोक्त धर्म से विरुद्ध नास्तिकता जैसी २ अधिक बढ़ेगी वैसा ही देश का सत्यानाश होगा। हम आशा करते हैं कि आ० समाजी आगे को सचेत होजावेंगे और नैपाल जैसे प्रान्त में आगे कभी प्रवेश न करेंगे। जिस से पंजाबी गुरुदयाल मास्टर कीसी दुर्दशा उनको न भोगने पड़ेगी। आ०समाजियों को लज्जित होने के लिये यह समाचार पुष्कल है॥

आर्यमित्र सम्पादक पण्डित रुद्रदत्त जी ता० ८।१०।१९०५ में लिखते हैं कि हरदुआगंज से पण्डित ज्वालाप्रशाद मिश्र जी और पण्डित भीमसेनजी पण्डित रुद्रदत्त के सामने से मुख मोड़ कर चले गये अब हरदुआगंज की सनातन धर्म सभा ने शास्त्रार्थ का कोलाहल मचा रक्खा है धर्म सभा के उपदेशक पण्डित बाबूराम शर्मा और पण्डित प्रभुदत्त जी धर्म सभा में ठहरे हुए हैं इन्हों ने आर्यसमाज हरदुआगंज को तो शास्त्रार्थ का चेलेंज दिया था उसका प्रति उत्तर नाथूराम शंकर ने देदिया।

(१) आर्यमित्र सम्पादक पण्डित रुद्रदत्त शर्मा का यह लेख देखकर हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि झूठ लिखना झूठ बोलना झूठ पढ़ना तो मानो पण्डित महाशय का जन्म घूंटी है।

क्या रुद्रदत्त जी अपनी दुर्दशा को भूल गये जो शेरकोट में हुई थी जिस पर पण्डित भीमसेन जी को दूसरे गुरुघंटाल दयानन्द मानते थे वैयाकरण भूषण कह २ कर मुख्य शिष्य दयानन्द जी के पुकारते थे मानो पूर्ण उपदेश है तो संसार मात्र इन्हीं को है आज लिखते शर्म नहीं आती है कि शास्त्रार्थ से हार गये वाह रे बुद्धि।

(२) क्या विजयपत्र जो ज्वालाप्रशाद जी ने दिखाया था उसे देखकर जो आप पृथ्वी कूरेदते थे वह भूल गये फिर आप लिखते हैं कि पण्डित प्रभुदत्त पं० बाबूराम

शर्मा एक संस्कृत पत्र लिखकर योग्यता जानली क्या ये लिखना सत्य है सत्य भी प्रतीत होता है कि आपने व्यास गौतम प्रणीत संस्कृत को व्यर्थ वकवाद अशुद्ध ठहरादिया तो हम कौन हैं वाहरे तेरी समझ।

(३) खैर जो पत्र आपने संस्कृत में हमारे पास भेजे हैं वह हमारे पास मौजूद हैं समय पर आपका संस्कृतज्ञपना प्रकाश करेंगे।

(४) प्रयागदत्त के पत्र में ३६ अशुद्धियां हैं और आपके पत्र की अशुद्धी तो अक्षरों की ही बराबर हैं॥

रामसरूप शर्मा वैद्य महामंत्री
सनातनधर्म सभा खुरजा

राज· खुसी में यज्ञ
सद्धर्मोपदेशिनी सभा पीलीभीत

इस सभा ने ९ नवम्बर के दिन भावी महाराज श्रीयुक्त प्रिन्स आफ़ वेल्स राजकुमार के सपत्नीक हिन्दुस्तान की यात्रा के वास्ते बम्बई में शुभागमन की खुशी में बड़ी धूमधाम से जलसा कर राज भक्ति प्रकट करी। एक दिन पूर्व पं० शिवसहाय मिश्र सभापति जी की सम्मति से मन्त्री पण्डित रामाधीन अग्नि होत्री वकील हाई कोर्ट की तरफ से नगर के प्रतिष्ठित रईस तथा प्रधान हाकिमों के समीप सभा का निमन्त्रण पत्र भेजा गया फिर उसी दिन सभास्थान परमट का मन्दिर पं० विहारी लाल जी ने बड़ी खुसी के साथ पट मण्डपादि से भूषित कराया-उक्त दिन प्रातःकाल से १० पण्डितों द्वारा पण्डित नारायण दत्त पन्त जी के प्रबन्ध से स्वस्तिवाचन-गणेशादि पूजन विधि पूर्वक कराया गया और राज मङ्गल के अर्थ वैदिक तथा पौराणिक अनेक स्तोत्र पाठों से ईश्वर से प्रार्थना कीगई अनन्तर सुगन्धि द्रव्यों से उक्त पण्डित जीने हवन कराया इसी मध्य में सभा की तरफ से मन्त्री महाशय ने राजभक्ति कार्य सूचक तार युवराज की सेवा में बम्बई भेजा पश्चात् ब्राह्मण आदि भोजन कराकर युवराज की दीर्घायु प्रार्थना के साथ यज्ञ समाप्त किया गया इस यज्ञ में उप मन्त्री-लाला गणेशराय जी मुख्तियार तथा कोशाध्यक्ष साहूमदन लाल जी का अनुराग प्रशंसा के योग्य था आप ने इस में बड़ी श्रद्धा के साथ सहायता करी किसी बात की कमी न होने दी ईश्वर ऐसे सत्पुरुषों को चिरजीवी करे॥

मन्त्री-धर्मसभा पीलीभीत

विदित हो कि सनातन मूर्त्तिपूजा धर्म्मावलम्बि शाकद्वीपीयवर्ग वहिष्कृत दयानन्दमतानुयायी परमपाखण्डी मुस्तफ़ापुर निवासी शिवनन्दन मिश्र ने विरुद्धता से मेरा नाम आर्य्यावर्त्त तथा आर्य्यमित्र और अपने विज्ञापन में मुद्रित कर प्रकाशित कर दिया है इस हेतु यह विज्ञापन दिया जाता है कि दयानन्दियों की धूर्त्तता से समस्त सज्जनवर्ग बचें। इतिदिक्

सम्पादक—आ० समाजियों का झूठा मिथ्या व्यवहार सर्वत्र खुलजाता है तो भी ये मिथ्या को नहीं छोड़ते बड़े धृष्ट हैं।

ह० पं० रामलोचन मिश्र
राघवपुर निवासी
श्रीमते रामानुजाय नमः

ता० १९ नवम्बर सन् १९०५ एवं मार्ग शीर्षवदि ७ रविवार सं० १९६२ वि० को गांव सुरीर में पंचायत गांव ३६ मय पंच अलीगढ़ के जुड़कर यह बात करार पाई है कि जो विधवा विवाह अलीगढ़ में ता० २० अगस्त सन् १९०५ ई० को हुआ है उस के साथ जो विरादरी वैश्य बारह सेनी विरादरी से खारिज हैं (जिसका कि विज्ञापन पहिले छप चुका है) यदि कोई सख्श (३६ गामों) में से उन का साथी होगा यानी खाना पीना रोटी बेटी राह रश्म विरादर याना रक्खेगा वह भी विरादरी से खारिज किया जावेगा यदि किसी जल्से में खारिज किये हुये जावें तो उस में अपनी विरादरी न जावेंगे जो इसके खिलाफ करैगा वह भी विरादरी से खारिज किया जावैगा—

इस पर सब आये हुये पंचों के हस्ताक्षर हुये ॥

आपका—रामप्रसाद शर्मा वैद्य

मन्त्री सनातनधर्म सभा सुरीर (मथुरा)

मध्यप्रदेश जिला दमोह

यहां पर देवरी निवासी धर्मोपदेशक पं० श्री पण्डित लक्ष्मीदत्त जी का शुभागमन हुआ आप ने अपने अजीव मनोहर प्रभावशाली व्याख्यान नित्यकर्म—वर्ण धर्म—स्वदेश वस्तु प्रशंसा आदि विषयों पर दिये कि जिन के श्रवण करने से हम ग्राम वासियों को परमानन्द लाभ हुआ दिन प्रति सैकड़ों मनुष्यों के समूह का विचित्र संघट्ट देखकर आश्चर्य होता था जो कि पण्डित जी के व्याख्यान समय विद्यमान होते थे प्रत्यक्ष में फल यह हुआ कि उक्त पण्डित जी

के सदुपदेश व हम ग्राम वासियों के उत्साह से कार्त्तिक पूर्णिमा को सनातन धर्म सभा यहां स्थापित हुई सभा सम्बन्धी प्रबन्ध कर्त्ता भी अत्यन्त सुयोग्य हुवे हैं कि जिन्हों ने निम्नलिखित अधिकार सहर्ष स्वीकार किये हैं-

सभापति-*श्री ठाकुर मदनमोहन लाल जी।
उपसभापति-श्री पण्डित शिवप्रसाद अयाची जी।
मन्त्री-पञ्च श्रीमहन्त साधूराम जी।
उपमन्त्री-श्री सेठ किशोरी लाल जी मारवाड़ी।
कोषाध्यक्ष-श्री सेठ प्यारे लाल जी मारवाड़ी।
पुस्तकाध्यक्ष व उपदेशक-श्री पण्डित भगवानदास पौराणिक।

दस्तखत-अमृतलाल

हर्दुआगंज जि० अलीगढ़ से बंशीधर चौबे लिखते हैं कि ता० ९ नौम्बर को सभा का अधिवेशन तथा भगवदुपासना की गयी। इसी अवसर में लाल के दर्शनार्थ वलद लाला हरदेव दास वैश्य अगरवाल ने आर्यसमाज में इस्तीफ़ा जवावी रजिष्टरी द्वारा दाख़िल किया। उक्त लाला साहब ३० वर्ष से आर्यसमाजी थे और वहां कोषाध्यक्ष भी रहे। अब श्री रामलला की शरण में आ गये। और पूरणमल अग्रवाल वैश्य भी आ० समाज में इस्तीफ़ा देकर रामलला की भेंट देके धर्मसभा में शामिल हुए।

पं० राम प्रशाद शर्मा वैद्य सुरीर ज़ि० मथुरा से लिखते हैं कि धर्मसन्ताप नाम का पुस्तक धर्मप्रचारार्थ छपाया है। जिस किसी सनातन धर्म सभा को वा अन्य किसी महाशय को उक्त पुस्तक की आवश्यकता हो वा सभा बांटने के लिये मगावे तो) ॥ का टिकट भेज कर उक्त पते से मगालेवें ॥

आजकल हमारे प्रिय आर्यसमाजी पातिव्रत धर्म का नाश कर रहे हैं और हमारे भोले भाई उनके धोखे में आकर अपना धर्म खोदेते हैं उनके कल्याण के वास्ते और सनातनधर्म के हितार्थ मैंने एक नियोग नाटक रचा है और उसमें ये दिखाया है कि पातिव्रत धर्मनाश करने से यह खराबी होती है सो मेरी यह इच्छा है कि उसको छपवाकर मुफ़्त बांटा जाय छपाई का आधा मूल्य तो धर्मार्थ मैं देसक्ता हूं आधा मूल्य कोई सनातन धर्म का प्रेमी देना चाहे तो उसको छपवाकर मुफ़्त बांट सक्ते हैं सो प्रियगण इस अवसर को मत चूकना

* यहां पर श्रीठाकुर जी की मूर्त्ति है यानी मूर्त्ति का नाम मदनमोहन है मन्दिर में विद्यमान है ॥

सनातन धर्म का बड़ा उपकार होगा जो महाशय इस दान में सामिल होना चाहें वे नीचे लिखे पते से ख़बर दें।

मैं सनातन धर्म का सेवक हूं इसवास्ते मेरे से दुराचारियों का दुराचार नहीं देखा गया इस वास्ते नाटक रचा है।

मु० सुनपत जि० देहली
पं० रामेश्वर दत्त शर्मा वालसभापति

वेद प्रकाश अ० १० में परशुराम शर्मा (यथा मांसं०) अधूरा मंत्र लिख के लिखते हैं कि जगन्मोहन वर्मा उत्तर दें। इस मंत्र में " निहन्यते „ पद है जिसके अर्थ के न जानने से उक्त महाशय को ऐसा लिखने का साहस हुआ है। इस पद का लौकिक अर्थ न करके वैदिक प्रणाली से अर्थ कीजिये निघंण्टु में हन्ति को गतिकर्मा लिखा है जिसके अनुसार " निहन्यते " और " निहन्यताम् „ का अर्थ लगता है और लगाने होगा। आगे आप " ऐतरेय ब्राह्मण का समय „ में लिखते हैं कि महीदास ऐतरेय ब्राह्मणकार वही थे जो परिशिष्ट चरणव्यूहके रचयिता थे। और आप एक श्लोक भी लिखते हैं जिसमें व्यकारि पद चिन्तनीय है जिसका अर्थ व्याख्यान किया है न कि बनाया। महीदास जिन का समय आप लिखते हैं चरणव्यूह के टीकाकार हैं न कि रचयिता। आप काशी में छपे सभाष्य चरणव्यूह को देखिये सामग्री जिस महीदास ऐतरय को बताते हैं उनका नाम छान्दोग्योपनिषद ३।१६।७ में है यदि ऐसा हो तो व्यास को कबका मानोगे और शङ्कर को तो अपना सम कालीन कहोगे न ?। ज० मो० वर्मा

सच्चा विज्ञापन आजमा के देखिये ॥

सर्वज्वर नाशक सुदर्शन चूर्ण १) रुपये का ⅝ धन्वन्तरि वटी सर्व ज्वर पर अनुपान से १) रु० की १०० गोली। एकाहिक तृतीय ज्वर नाशक जड़ी १) रु० की ⅝ शीतभंजी (जाड़ा) कंपज्वर नाशक १) रु० का ⅝ ज्वर के पीछे ताकतलाने वाले चूर्ण १) रु० का ⅝ अष्टशूल नाशक (सर्वउदर) रोग पर वटी २) रु० की १०० गोली। पिलही नाशक खारवटी ५ रुपये सैकड़ा १००। सोथकी दवा सोथ नाशक है १) रु० की २५ वटी। कास श्वास पर सर्वोत्तम खार १) का १ एक तोला। साधारण खांसी की वटी सूखी पर १) की सौ १००। अंजन चन्द्रो

दय वटी धुन्धी तिमिर की १) रु० की २५। हाजमा (पाचक) की गोली ॥) की सौ। अंजन फूली नई माड़ा नया होवे तापर १) एक तोला। रेचक वटी १) में ६। ८ दस्त आते हैं १) की ४०। बाला भूषण (गर्भाशय) शोधक चूर्ण २) का ऽ— सर्व घाव पूरक जड़ी सरती है तीन रोज में पूर देती है घाव में दर्द नहीं होता है जो घाव कटे शस्त्रों के हैं १) की ऽ— आंखों का सोथ नाशक वटी लेप १) की २५ पच्चीस। ये सर्व दवा बहुत अजमाई और इन के बाद बहुत दवा अंगरेज़ी दवाइयां जो २ पवित्र हैं राखता हूं। मैं दवाई स्वयं बनाता हूं।

इन दवाइयों को दिन में २ घंटा प्रातः संध्योपासन के बाद १ घंटा गरीवों को विना दामों के धर्मार्थ बांटते हैं। सायंकाल २ घंटा दिन रहे फिर भी बिना मूल्य मौताजों को बटती हैं।

और परदेशी मौताजों को डांक भाड़ा देने पर बिना मूल्य भेजी जाती हैं एक रोगी को २) रु० दो रुपया तक की देते हैं।

विद्यार्थियों की मांग आने से चौथाई दाम में देंगे यदि विद्यार्थी गरीव होंगे तो उन्हें बिना मूल्य खाली डांकव्यय में दवाइयां हम से मिलेंगी॥

पुनः प्रार्थना है कि हम एक रुपये से १५) पंद्रह रुपये तक की जन्म पत्री गणित के वा फलित के सहित लिखते हैं दाम चौथाई पेस्तर पत्र के साथ भेजना होगा वाकी वेलूपेवल द्वारा लेंगे पीछे प्रथम जन्मपत्री नमूना में जो ग्राहक देंगे सो लेंगे इति॥

पं० रामदत्त रामप्रसाद शर्मा अवस्थी

मुकाम—गड़ोला डांक—जसपुरा ज़िला—बांदा

सम्पादक—पं० रामप्रसाद अवस्थी सचे शुद्ध ब्राह्मण हैं चालाकी वा मिथ्या व्यवहार कदापि न करेंगे ऐसा हमारा विश्वास है। इस से जिन की इच्छा हो निःशंक औषध्यादि मगावें।

रासकोप सिस्टमवाच॥

यह घड़ी ठीक वक्त बताने वाली है मजबूती में बहुत उम्दा अव्वल दरजे की है एक दफे चाबी देने से ३० घन्टा बराबर चलती है गां० ५ वर्ष कीमत ३।) रु०॥

प्रसिद्ध पता—श्री निवासदास गुप्त मथुरा (१)

गरीबों को मुफ्त भी मिलेगी (३)

हिन्दु सुधार वैदिक औषधालय की सिद्ध औषधियें

दुनियां में सब से बढ़कर आरोग्यता ही परम लाभ है

नेत्रों से विना संसार का आनन्द नहीं। फायदे मसीरे से कुछ कम नहीं ॥

दृष्टी की कम जोरी धुन्ध गुवार नेत्रों के वाल गिरना खुजली पड़वाल अंधेरा आंखों से पानी वहना सर्वनेत्र रोग के लिये रसायन असली भीमसेनी कपूर का नयनामृत अञ्जन १ तो० दाम २) रु० धुन्ध फोले के लिये अमृत सिताञ्जन १ तो० दाम ५) रु० पुराने सुजाक के लिये याने बीस प्रकार के प्रमेह के लिये प्रमेहान्तरस १४ खुराक दाम १॥) रु० रक्त शोधक अर्क खून की बीमारियों और उपदंश से खून बिगड़े के लिये १ शीशी ४ औंस दाम १) रुपया रक्तार्श दमनी वटिका खूनी ववासीर के लिये कितना ही खून क्यों न जाता हो १४ गोली खाने से विल कुल आराम दाम १) रु० पाण्डुरिरस ज़ोफ जिगर पाण्डुरोग के लिये कुठार है १४ खुराक दाम १) रु० विरेचन दमनार्क वदहज़मी से वार २ पाखाना आने की शिकायत को रोकने के लिये ५ बूंद काफी हैं गृहस्थ के रखने योग्य १ औंस शीशी दाम २) रु० लोमशातन अर्क जंटल मैनों के लिये बाल उड़ाने का १ औंस शीशी ॥) आने ३ शीशी १) रु० १ दर्जन के ३) रुपया रुचि वर्द्धक चूर्ण गिज़ा देर से हज़म होना भूख कम लगना मन का मिचलाना अजीर्ण बदहज़मी पेट में शब्द होना प्यास लगना प्रथमावस्था हैज़ा हिचकी रोग को भी बहुत गुणकारी है दाम फी तोला ।) आने ५ तोला दाम १) रु० विशूच्याध्मानहंत्री गोली हैज़ा पेट का गुम्म होना और बोलना पेटशूल खट्टे डकार आना पाचन शक्ति कम होना कलेजे में पीड़ा पड़ना अफरा होना १०० गोली दाम ॥) आने। कासघ्नीवटिका खुश्क वा तर खांसी के लिये अलग अलग हैं १०० गोली दाम ॥) आने। व्यवस्था पत्र साथ रवाना होगा डाकव्यय अलग होगा अन्य रोगों की औषधी भी मिल सक्ती हैं चातुर्थिक बुखार दाद पीड़ा की दवाई)॥ टिकट भेजने से मुफ़ रवाना होगी ॥

मन्त्री सनातनधर्म्म सभा की सिफारिश आने पर विद्यार्थी वा निर्धनों को सिर्फ डाकव्यय खर्च करने से दवाई भेजी जायगी ॥

पण्डित गुरुदत्त शर्मा मैनेजर हिन्दुसुधार वैदिक औषधालय

औफिस बहराम पुर, ज़िला गुरुदासपुर (पञ्जाब)

॥—धावहूकाम धाम सवत्यागी (३)—॥

आनन्दसमाचार ! सनातनधर्म का प्रचार !! हिन्दू शास्त्र का गुप्तरहस्य !!!

*:-:०:-:**—व्याख्यान रत्न माला—**:-:०:-:*

प्रियपाठक गण ? आज कल जैसा हिन्दू धर्म पर शङ्कट पड़ा है वैसा और किसी धर्म पर नहीं, कराल कलिकाल की विशाल महिमा से, आज कल की नई रोशनी के वितण्डावादी पुरुष अचल हिन्दू धर्म को अपनी असंगता बातों से उड़ाना चाहते हैं। ऐसे अदूरदर्शी लोगों के फेर में हमारे बहुत से भोले भाले हिन्दू भाई पड़ जाते हैं, ऐसे समय में एक ऐसी पुस्तक की बड़ी ही आवश्यकता थी कि जिस से साधारण मनुष्य भी अपने धर्म में दृढ़ होजायें तथा नये महाशय भी व्याख्यान देकर सनातनधर्म का प्रचार कर सकें, यह पुस्तक इसी अभाव के दूर करने के लिये बनाई गई है, बहुत क्या इस एक ही पुस्तक से पूरा व्याख्याता होसक्ता है। पातिव्रत धर्म, आध्यात्मिक उन्नति, गो-रक्षा, वैश्यधर्म, वर्णव्यवस्था, मृत्यु पश्चात् जीवन, सम्प्रदाय भेद, धैर्य्य, क्षमा, उपनयन, प्राचीन और अर्वाचीन उन्नति, साकारोपासना, अवतार, मूर्त्तिपूजा श्राद्ध, तीर्थ, सनातन धर्म की महिमा, भक्ति, वैदिक धर्म की श्रेष्ठता आदि विविध विषयों पर सनातनधर्मानुसार श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणों के वाक्य तथा अनेक प्रकार की अखंडनीय युक्तियों से व्याख्यान लिखे गये हैं। हम अ-नुरोध पूर्वक कहते हैं कि इस पुस्तक की एक प्रति हिन्दू मात्र को अपने पास रखनी चाहिये। यदि बड़े २ महोपदेशकों की वाक्य रचना देखनी हो, यदि बड़े २ समाजों में अपनी प्रेममयी वाणी से श्रोताओं को मुग्ध करने की इच्छा हो, यदि सनातन धर्म के जटिल विषयों का भाव दर्पण की समान देखना हो तो इस अमूल्य रत्न के लेने से कदापि न चूकिये। बढ़िया काग़ज़ पर बम्बई के सुन्दर टाइप में छपी विलायती कपड़े की जिल्द बन्धी है, पृष्ठ संख्या २०० साइज़ रायल अठपेजी है सर्व साधारण के सुभीते के लिये मूल्य केवल १॥) एक रुपया आठ आनें। तिस्पर भी व्याख्यानरत्नमाला के प्रत्येक ग्राहक को धर्म प्रचार के हेतु निम्नलिखित ६ छः पुस्तकें उपहार में दी जावेंगी ॥

उपहार

१ पुनर्जन्म विचार, २ द्रौपदी चरित्र, ३ रहिमनशतक, ४ महारामायण ५ वेदान्तसार, ६ आश्चर्य प्रश्न विज्ञान ॥

पता—बी. रामचन्द्र और कम्पनी दीन्दारपुरा—मुरादाबाद

५) रु० का माल ३) रु० में

गौरी नागरी कोष

५५० पृष्ठ लग भग ५००० शब्द

जिस की पांच वर्ष से धूम पड़ रही थी अब छपकर तयार होगया यह कोष वही है जो बड़े २ विद्वानों की मंडली द्वारा १० वर्ष के परिश्रम से तयार हुआ और ऐसा उत्तम कोष आज तक नहीं बना और न आगे को आशा है यह एक बी०ए० पास मास्टर है ५) में उम्रभर के लिये नौकर होता है रात दिन पास रहेगा जब इससे हिन्दी उर्दू प्राकृत संस्कृत अरबी फारसी आदि शब्दों के मायने पूंछोगे पहिले हिन्दी में समझायेगा फिर अंगरेजी में बतलायेगा देव नागरी भंडार के रत्नों में यह कोहनूर हीरा है वकील मुख्तार जमींदार अहलकार ग्रन्थकार लेखक आदि सब का सहायक है पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे लाट स्यकडानल बहादुर तथा रीवां नरेश एवं टैक्टबुक कमेटी पंजाब ने भी इसकी क़दर की है ऐसा लायक़ मास्टर [कोष] अब और दूसरा नहीं है ट्रान्सलेशन [तर्जुमा हिन्दी से अंगरेजी अंगरेज़ी से हिन्दी] करने वालों के बड़े कामका है अतएव स्कूल के विद्यार्थी हिंदी और अंगरेजी में योग्यता प्राप्त करने के अभिलाषी एवं अध्यापक (मास्टर) इसको ख़रीदने से न चूकें।

सुनते हैं साहब ! एक नई बात ॥

केवल पांच आने मात्र में रासकोप सिस्टम घड़ी देंगे। किन्तु प्रथम पांच आने भेजकर हमारा सार्टीफिकेट हांसिल कीजियेगा।

पांच सौ व्यापार मू० १) रु०

इसकी सिर्फ सौ कापियां बाकी हैं जिन्हें मगाना हो झटपट मगालें अन्यथा पछिताना होगा यह किस्सा नहीं है जो एकबार पढ़कर ताक में रख दो इसमें रंग रोगन वार्निश साबुन दियासलाई मीनाकारी अर्क कपूर आदि चीज़ बनाने की रीति लिखी है ऐसा कोई व्यापारी नहीं जिसके काम की बात इसमें न मिले।

दो अदद के ख़रीदार को एक अदद मुफ़्त में देंगे।

रबर टाइप का अंगरेज़ी छापाखाना सब सामान सहित २।) रु० में।

नाम पता क्रोड़ पत्र विजिटिंग कार्ड कुछ ही छापिये मुहर बनाना भी न पड़ैगी। सब इसके द्वारा अंग्रेज़ी बहुत जल्द सीख जाते हैं।

पं० सूर्यप्रसाद शर्मा मैनेजर सारस्वत कम्पनी मेरठ सिटी।

ब्रा०स०कामूल्यप्राप्तिस्वीकारता०१३ अगस्तसेअन्तसितंवरतक

२८७ पं० गिरजाशंकर भ्योंगांव ३)
७५० गुणनिधि शर्मा गौटिया २॥)
१२१७ पं० नारायणभट्ट वंटवाल २।)
१०७६ पं०सदानन्दशर्माडेरागाजीखां २।)
१२०२ पं० लालचन्द शर्मा २।)
३८७ वा०दुर्गाप्रसादजीजसवन्तनगर ४)
१२३६ पं० राममणिशर्मादी०नैपाल २।)
९४४ जयदयाल वि० अमृतसर १॥।)
९१३ पं० गयाप्रसाद वनीपारा ३)
४५६ वा० मिश्रीलाल विल्हौर २।)
१२२० वा०लालविहारीजी सतना २।)
१२३९ रामदास नन्दकिशोर व्यावर ३।)
१२४० प्रागदत्त देवीप्रसादइटारसी २॥)
१२४१ वा० शालिगराम जगाधरी २।)
१२३५दुर्गाप्रसादमहरकीलालजबलपुर२।)
९०५ पं० लीलाधर शर्मा सिकन्दरा २।)
१२४७ पं०मंगलदीन जी शाहाबाद २।)
१२४६ राधाकृष्ण जी व्यावर ३।)
७६३ स्वा० रामानुजदास विहारीपुर १)
५६४ पं० रामप्रतापशास्त्री लाहौर १॥)
६८१ पं०भोलानाथजीगो०अम्बाला१॥)
६०० पं० लज्जाराम जी इटावा २)
३११ ला० शिवनारायण जी इटावा २)
७७८ पं० नारायणदत्त पीलीभीत २।)
१५५ पं० सूर्यप्रसाद दी०उन्नाव २।)
८३८ पं० वावूराम जी जसवन्तनगर १॥)
१५० पं० श्रीकृष्णदास जी विसौली २।)
१२२६ पं०विहारीलालशा०जबलपुर२।)
४३६ पं० नारायणप्रसादविलासपुर २।)
१२६० पं० नर्मदाप्रसाद जी सागर ३॥=)
१२५५ पं० चेतनानन्द जी नैपाल २)
७६७ पं० काशीदत्त झा खैरागढ़ १॥=)
६३२ पं० चुन्नीलाल जी लाहौर २।)
११४९ ला० मथुरादास जी राहों २।)
९०१ पं० शुकदेव शर्मा जानसठ २)
१२०१ पं०शंकरलालशर्माहर्दुआगंज २।)
१०२७ वा० नन्दलाल जी नौवतपुर २।)
११५३ पं० काशीराम जी वंगलौर २)
१०२२ पं० विश्वेश्वरदत्त जबलपुर २।)
८३६ वा० खूबचन्द जी सुरीर २।)
१०३५ घूरीलाल सूरजमल व्यावर ३।)
१२२९ वा० सरदारसिंह हिसार २।)
१०२८ स्वा० मुकुन्दप्रकाश लखनऊ २।)
१२५६ वा० उदयभानसिंह टिकारी ३।)
१०२५ पं० जगन्नाथ शर्मा वरवाल १॥)
१२५१ पं० कुसमरीलाल कोटकादर २।)
१२४४ मा० वसोरेलाल जी वुहानी २।)
१२५३ ला० लक्ष्मीप्रसाद जी ढुंगेल नैपाल २।)
२७० वा० गिर्जानन्दसिवनीछपारा २।)
१२५८ चौ० लोचनमल जी हिसार २।)
१२५७ सेठ राधाकृष्ण जी हिसार २।)
८०६ शिवदत्तवी०ए०पिंडदादनखां१।-)
१२६६ वा० बलदेवसहाय धनौरा २।)
७१६ पं० मुकुन्दराम शर्मा बरेली २।)
१२७९ पं० शिवनारायण जी सांघी २)
१२८१ पं० रामजीलाल कोटकपूरा १॥)
१२८३ पं० लक्ष्मीचन्द जी कौल १॥)
१०९६ पं० हरदेव जी छपरौली ३)
१२८५ पं० विद्यापति जी सांघी २।)

श्रीगणेशायनमः ॥

ब्राह्मणसर्वस्व

यत्रब्रह्मविदोयान्ति दीक्षयातपसासह ॥
ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्माब्रह्मददातु मे ॥

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

नमस्तेप्राणप्राणते नमोऽअस्त्वपानते ।
पराचीनायतेनमः प्रतीचीनायतेनमः सर्वस्मैतइदंनमः ॥८॥
यातेप्राणप्रियातनूर्योतेप्राणप्रेयसी ।
अथोयद्भेषजंतव तस्यनोधेहिजीवसे ॥ ९ ॥
प्राणःप्रजाअनुवस्ते पितापुत्रमिवप्रियम् ।
प्राणोहसर्वस्येश्वरो यच्चप्राणितियच्चन ॥ १० ॥

अ०—हे प्राण ! मुखनासिकाभ्यां श्वासनिःसारणं कुर्वते ते तुभ्यं नमोऽस्तु तथाऽपानते बाह्यवायोर्ग्रहणं कुर्वते च तुभ्यं नमोऽस्तु । पराचीनाय परं गच्छते ते तुभ्यं नमः । प्रतीचीनाय प्राणिनः प्रति—आगच्छते च ते तुभ्यं नमः । सर्वस्मै वायुरूपेण सर्वविधाय ते तुभ्यमिदं नमो नमनमस्तु । हे प्राण ! या ते तव प्रिया तनूरस्ति हे प्राण ? उ या च ते तव प्रेयसी द्वयोर्मध्येऽतिशयेन प्रिया [ताभ्यां नमोस्तु । प्राणचेष्टातारतम्यवशादेव किमपि शरीरं तथाविधहितसाधकं सत्सम्बन्धिनां प्रियं प्रियतरं च भवति] अथोऽनन्तरं तव यद्भेषजं सुरक्षानिमित्तमौषधमस्ति तस्य तद् [कर्मणि षष्ठी]

नोऽस्माकं जीवसे जीवनार्थं धेहि धारय। यथा प्रियं पुत्रं पिताऽनुवस्ते शीतोष्णादितोऽनुकूलेन वस्त्रादिना रक्षति तथा प्राणः सर्वाः प्रजा रक्षति। यच्च प्राणिति प्राणचेष्टां कुर्वन् जीवयति यच्च न प्राणिति प्राणचेष्टामकुर्वन् प्राणिनं मारयति। अतः कारणात् प्राणएव सर्वस्य प्रसिद्ध ईश्वरोऽस्ति। निरुक्तकारयास्केन दैवतकाण्डे यदुक्तम् " प्रकृतिभूमभिर्ऋषयः स्तुवन्तीति " तदाशयेनात्रापि विकृतिरूपस्य प्राणस्य प्रकृतिरूपसर्वेश्वरमहेश्वरमहत्त्वेन स्तुतिरस्तीति विस्पष्टमेव॥

भावार्थ–हे (प्राण ! प्राणते ते नमः) प्राण ! मुख नासिका द्वारा श्वास को निकालते हुए तुम्हारे लिये नमस्कार है। और (अपानते नमो अस्तु) बाहर से भीतर को श्वास लेते हुए तुम को नमस्कार हो, (ते पराचीनाय नमः हम से परे जाने वाले तुम को नमस्कार है, (प्रतीचीनाय ते नमः) प्राणियों के प्रति आते हुए तुम को नमस्कार है, (सर्वस्मै ते–इदंनमः) वायु रूप से सर्वत्र विद्यमान तुम को यह हाथ जोड़ के प्रत्यक्ष नमस्कार है॥८॥ (प्राण या ते प्रिया तनूः) हे प्राण ! जो तुम्हारा प्रिय शरीर है (उ) और हे (प्राण ?) प्राण (या ते प्रेयसी) जो तुम्हारा शरीर दो में अत्यन्त प्रिय है [उन दोनों को नमस्कार है। प्राण चेष्टा के न्यूनाधिक होने से ही कोई शरीर वैसा न्यूनाधिक विशेष हितसाधक हुआ संबन्धियों को प्रिय वा अत्यन्त प्रिय होता है]। (अथो यद्भेषजं तव) इसके अनन्तर तुम्हारा जो अच्छी रक्षा का हेतु औषध है (तस्य नो जीवसे धेहि) उसको हमारे जीवन के लिये धारण कीजिये, (प्रियं पुत्रं पितेव) जैसे प्यारे पुत्र की शरदी गर्मी आदि से अनुकूल वस्त्रादि द्वारा पिता रक्षा करता है। वैसे ही (प्राणः प्रजा अनुवस्ते) प्राण प्रजा की रक्षा करता है। (यच्च प्राणिति) जो प्राण चेष्टा करता हुआ मनुष्यादि को जीवित रखता (यच्च न) और जो प्राण चेष्टा न करता हुआ मनुष्यादि को मार डालता है। इस कारण से (प्राणो ह सर्वस्येश्वरः) प्राण ही सब के जीवन मरण का ईश्वर [मालिक] है। निरुक्तकार यास्क ऋषि ने दैवत काण्ड में जो लिखा है कि–" मूल कारण के महत्त्व को लेकर वेद में कार्य पदार्थों की स्तुति की गयी है। " उसी अभिप्राय से विकृति रूप प्राण की प्रकृति रूप महेश्वर के महत्त्व को लेकर यहां स्तुति स्पष्ट सिद्ध ही है॥

ब्रा० स० अं० ५ पृ० २०८ से आगे स्मार्त्तधर्ममीमांसा ॥

और शुक्ल यजुर्वेद के ४० वें अ० में लिखा है कि " जिस काल में ज्ञानी पुरुष को सब प्राणी एकात्मरूप दीखने लगते हैं उस समय सब में एकत्व देखते हुए विद्वान् को कौन मोह वा कौन शोक बाकी रहता है?। अर्थात् सभी प्रकार का मोह [अज्ञान] तथा शोक सूर्योदय में अन्धकार के तुल्य मिट जाता है। यदि हम दृष्टि फैलाकर जगत् में देखते हैं तो निश्चय होता है कि जहां २ एकतादृष्टि है वहा २ यदि हमारे धन वस्त्र भोजनादि पदार्थ को हमारे किसी मेली ने ले लिया तो हम कह लेते तथा मान लेते हैं कि हमारे स्त्री पुत्र और अमुक मित्रादि हमी तो हैं, वह पदार्थ घर ही में तो है, हम और वे एक ही तो हैं। हम और उन में भेद ही क्या है ?। जो काम हमने किया वह उनने और जो उन ने किया वह हमने किया। पिता माता अपने प्रिय सन्तान को उत्तम २ बहु मूल्य वस्तु खिला पहना कर सन्तुष्ट हो जाते तथा उस से भी अधिक आनन्द का अनुभव कर लेते हैं कि जो आनन्द पुत्र को छोड़ कर अपने खाने पीने से हो सकता था। यह सब एकात्मवाद वा एकता का उदाहरण है। चाहे यों कहो कि भेददृष्टि में ही सब दुःख वा विपत्तियां हैं और एकता में सब आनन्द ही आनन्द है। एकता और एकात्म वाद इन दोनों का वास्तव में एक ही मतलब है। संसार में लोग कहा करते हैं कि देखो भाई एकता करो, विरोध को छोड़ो। सो यदि वास्तव में स्वाभाविक भेद हम में होता तो एकता कभी हो ही नहीं सकती, उस दशा में एकता करने का प्रस्ताव ही निरर्थक था। वास्तव में तो एकता ही है किन्तु काम क्रोध लोभ वश होकर हम लोगों ने जो कृत्रिम अनेकता वा भेद खड़ा कर लिया है उस को मिटाने का उद्योग ही एकता वा एकात्मवाद को सिद्ध करने वाला जानो। हम प्रबल दावे के साथ लिखते हैं कि वेदानुयायी सभी शास्त्रों का परम प्रधान सिद्धान्त यही है कि विरोध वा भेद भाव को हटाया जाय और एकता मेल वा एकात्मवाद की वृद्धि हो सब सनातन धर्मी आस्तिकों के परममान्य श्री भगवद्गीता में लिखा है कि–

आत्मौपम्येनसर्वत्र समंपश्यतियोऽर्जुन !।
सुखंवायदिवादुःखं सयोगीपरमोमतः ॥ अ० ६ ।

अर्थः–हे अर्जुन ! जो मनुष्य अपने तुल्य ही सुख वा दुःख को सब प्रा-

णियों में देखता है वही सर्वोत्तम योगी माना गया है। इस प्रकार का समझ ना एकात्मवाद को यथार्थ माने विना कदापि नहीं बन सकता। हमारे मधु सूदन गो स्वामी जी श्रीभगवद्गीता के प्रमाण से कभी इनकार भी नहीं कर सकते क्योंकि यह पुस्तक सब वैष्णवों को परममान्य है। और इस के स्मृतिपदवाच्य होने के प्रमाण हम पहिले ही व्यास सूत्रादि में से अनेक लिख चुके हैं। और एकात्मवाद के वीसों प्रमाण भगवद्गीता में जब विद्यमान हैं तब न जानें गोस्वामी जी कैसे विना विचारे लिख बैठे कि "उन में तो कहीं अद्वयवाद का नाम भी नहीं है" अब आशा है कि ऊपर के प्रमाणों के अनुसार स्मृतियों का सिद्धान्त अद्वैतवाद परक ही गोस्वामी जी भी मान लेंगे। क्यों कि वैष्णव संप्रदायों के परम मान्य श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में प्रथम श्लोक में ही स्पष्ट लिखा है कि "यत्र त्रिसर्गोमृषा„ और इन वेद से भिन्न सभी आर्षग्रन्थों का स्मृतिपदवाच्य होना युक्ति प्रमाण दोनों से सिद्ध ही हो चुका है, तब स्मृति प्रमाण से जगत् का मिथ्या होना भी सिद्ध है। इस दशा में गोस्वामी का वह कथन भी कटगया कि "न कहीं जगत् को मिथ्या कहा है„। अब आशा है कि म० गोस्वामी जी निष्पक्ष होकर ऊपर के लेख को स्वीकार करेंगे।

म० गोस्वामी–भगवान् श्री शंकराचार्य ने जो आसुरी जीवों के मोहार्थ मायावादशास्त्र प्रणयन किया है उसमें व्यामोहकर अद्वयवाद के साथ जगत् को मिथ्या और पाप पुण्य को भ्रममात्र कहना उचित ही था। ऐसा न होता तो जीव मोहित क्यों होते। पर स्मार्त्त महाशय बड़े विषम में आपड़े जो पाप पुण्य स्वर्ग नरक को मिथ्या कहते हैं। तब तो स्मार्त्त कर्म की पूंगी नहीं बजती है। और जो इनको सत्य कहते हैं तो मायावाद अद्वैतमत से न्यारे होते हैं, तब शोच विचार कर दो मार्ग कर डाले। १–व्यवहार २–परमार्थ। व्यवहार मार्ग में धर्म कर्म पाप पुण्य स्वर्ग नरक सब सत्य हैं। परमार्थ में सब मिथ्या हैं।

वाह साहब! क्या सिद्धान्त है। पाठक विचारिये तो! एक आदमी के पास जाली नोट है वह कहता है जब तक तुम मेरे धोखे में हो, नोट सच्चा है, जब समझोगे तो जाली नोट तो हई है। पर मुझे रुपया देदो। यही हाल स्मार्त्त धर्म का है। धर्म कर्म पाप पुण्य स्वर्ग नरक मैं तुम हैं तो यह सब मिथ्या पर तुम माने जाओ किये जाओ। थोड़ा विचारो? जो धर्म

परमार्थ में मिथ्या है वह धर्म ही क्या है और उसके अनुष्ठान से प्रयोजन ही क्या है ?। मिथ्या स्वर्ग के लिये मिथ्या दान पुण्य कराकर क्यों जगत् को मिथ्या भ्रम में डालना चाहिये ॥

समाधान—हमारे ब्रा० स० के पाठक ऊपर लिखे गोस्वामी के अभिप्राय को अवश्य समझ गये होंगे । गोस्वामी का यह कहना सर्वथा मिथ्या और वेदादि सब शास्त्रों से विरुद्ध है कि " आसुरी जीवों के मोहार्थ स्वामी शंकराचार्य जी ने मायावाद शास्त्र बनाया "। क्यों कि वेदान्त दर्शन ब्रह्मसूत्र भगवान् व्यास जी ने बनाया है कि जो विष्णु भगवान् के अवतारों में से एक हैं। वह वेदान्त श्रुतिमूलक है उस पर भगवान् शंकराचार्य जी ने भाष्य किया है, जिस भाष्य को वैष्णव सम्प्रदायों को छोड़ कर शेष सभी सनातन धर्मी शिरोधार्य परम प्रतिष्ठित मानते हैं । यहां गोस्वामी जी को यह बतलाना चाहिये था कि वे आसुरी जीव कौन २ देश वा जाति के किस काल में हुए थे जिन को मोहित करने के विचार से शंकर भगवान् ने मायावाद शास्त्र बनाया। क्या किन्ही जीवों को अज्ञानान्धकार में फंसाना विद्वान् महात्माओं का काम है ?। यह एक प्रकार का दोष भगवान् शंकराचार्य पर गो स्वामीजी लगाते हैं। वास्तव में शंकरभगवान् ने वेदान्तादि विषयों पर किये भाष्यादि द्वारा जो सिद्धान्त स्थिर किया है वह सर्वथा वेदानुकूल सत्य है। उस में लेशमात्र भी मिथ्या नहीं है। संसारस्थ दुःख सागर में डूबते हुये प्राणियों के उद्धारार्थ शंकर भगवान् ने वेद का गूढ़ सिद्धान्त अद्वैतवाद स्थापित किया है। कदाचित् पद्मपुराण के उन वचनों पर गोस्वामी जी की दीर्घ दृष्टि पहुंची होगी जिन में मायावाद को असच्छास्त्र तथा प्रच्छन्न बौद्ध लिखा है। सो यद्यपि मत भेद से एक दूसरे को बुरा कहने मानने का सिद्धान्त सनातन अनादिकाल से वेदानुकूल चला आता है। और वे दोंनों मत एक दूसरे की अपेक्षा खण्डित होते और परस्पर विरुद्ध ठहरते हुये भी दोनों ही अपने २ अंश में अपने २ विषय में सदा सत्य ही ठहरते हैं। जैसे कि श्रुति स्मृति दोनों में चारो आश्रमों का वर्णन है परन्तु विरक्त संन्यास आश्रम के साथ गृहस्थाश्रम का पूर्ण विरोध है। विरक्ताश्रम का सिद्धान्त (कुणपमिव सुनारीत्यक्तुकामोविरागी) सुरूपवती युवति स्त्री को मुर्दे के तुल्य समझने का है। जिस पुरुष के मन में स्त्री विषय संबन्धी दोष ठसाठस भरे हों, स्त्री की ओर से जिस को पूर्ण

घृणा हो, वही पक्का विरक्त संन्यासी माना जायगा। और गृहस्थ का विचार इस से सर्वथा विरुद्ध होता है और वैसा ही लेख धर्मशास्त्र में भी गृहस्थ के लिये प्रायः लिखा हुआ मिलता है।

प्रजनार्थंमहाभागाः पूजार्हागृहदीप्तयः।
स्त्रियःश्रियश्चगेहेषु नविशेषोऽस्तिकश्चन ॥ १ ॥ अ० ९
सन्तुष्टोभार्य्ययाभर्त्ता भर्त्राभार्य्यातथैवच।
यस्मिन्नेवकुलेनित्यं कल्याणंतत्रवैध्रुवम् ॥ २ ॥
पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्याभूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः ॥ ३ ॥
शोचन्तिजामयोयत्र विनश्यत्याशुतत्कुलम्।
नशोचन्तितुयत्रैता वर्द्धतेतद्धिसर्वदा ॥ ४ ॥ अ० ३

अर्थ-महाभाग्यवती घर की शोभारूप आदर सत्कार के योग्य स्त्रियां सन्तानों को उत्पन्न करने के लिये हैं। लक्ष्मी और स्त्री में कुछ विशेषता नहीं है। जिस कुल में नित्य ही स्त्री के व्यवहारों से पुरुष संतुष्ट प्रसन्न हो और पुरुष के व्यवहारों से स्त्री संतुष्ट हो, वहां निश्चय कल्याण ही होता है। इस लिये पिता, भाई, पति और देवरों को चाहिये कि अपनी पुत्री, भगिनी, पत्नी और भौजाइयों का उत्तम २ भोजन वस्त्र और आभूषणों द्वारा सदा ही आदर सत्कार किया करें। जिन कुलों में दुःखित रहती हुई स्त्रियां शोक करती हैं वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है। और जहां स्त्रियां दुःखित नहीं रहतीं वह कुल सदा बढ़ता है।

इन गृहस्थ विरक्त दोनों आश्रमों में यहां तक विरोध है कि यदि किसी गृहस्थ रईस का पुत्र (जिस के स्त्री पुत्रादि भी हों) संन्यासी हो जाय तो वह गृहस्थ उस के ईसाई मुसलमान आदि पतित हो जाने वा मर जाने के तुल्य शोक मानता है। ऐसा विरोध होने पर भी अपने २ अंश में दोनों ही अच्छे और माननीय ही रहते हैं। वे दोनों ही आश्रमवाले जैसा २ ही एक दूसरे (अपने २ विरोधी) को बुरा समझते हैं वैसे २ अधिक २ अपने २ आश्रम के कर्तव्य में दृढ़ होते हैं। रंभाशुकसंवाद भी इसका उदाहरण होगा।

इसी ऊपर लिखे विचार के अनुसार परमार्थ सम्बन्धी ज्ञानकाण्ड वालों

का विरोध यदि उपासना काण्ड के साथ आता है और एक दूसरे को बुरा कहता है तो इतिहास पुराणादि का विचार वहां अन्य से वैर विरोध करने का लेशमात्र भी नहीं है। किन्तु अपने २ अंश में दोनों को दृढ़ करने के लिये उस २ के विरोधी की निन्दा उस २ की अपेक्षा कियी गयी है। सो यह चाल लोक में भी ऐसी ही है कि यदि हम किसी राजा वा रईस की प्रशंसा करना चाहते हैं तो अन्य राजा रईसों की निन्दा का अभिप्राय न होने पर भी उसकी प्रशंसा की पुष्टि के लिये अन्यों का छोटापन वा तुच्छता दिखाने पड़ती है। इसी के अनुसार ज्ञान और उपासना को जानो। उपासनाकाण्ड का सहारा लेकर वैष्ण वादि सम्प्रदाय चले हैं। और ज्ञानकाण्ड वास्तविक अद्वैत वाद है। जैसे कोई गृहस्थ विद्वान् ज्ञानकाण्ड को बुरा न समझता हुआ भी अपने पुत्र को गृहाश्रम से विचलित न होने देने के लिये वा बीच में उसका चित्त ज्ञानवैराग्य की ओर न खिंच जाय इस विचार से ज्ञान काण्ड की निन्दा वा उसका खण्डन अपने पुत्र को सुनावे तदनुसार यदि पद्मपुराण में ज्ञानकाण्ड की कुछ निन्दा भी लिखी हो तो वह अपेक्षा बुद्धि से ठीक है। और दोनों काण्ड अपने २ अंश में ठीक और सत्य हैं।

इससे भिन्न द्वितीय यह भी शोचने योग्य है कि मायावाद यह नाम अद्वैत ज्ञानकाण्ड का क्यों कर है?। हमारी सम्मति तो यह है कि शंकर भगवान् का माना अद्वैत सिद्धान्त मायावाद नहीं है किन्तु वह सिद्धान्त ब्रह्मवाद कहा जा सकता है। उसका आशय एक ब्रह्म को सिद्ध करने वा परमेश्वर का यथार्थ स्वरूप दिखाने का है। इसी लिये ब्रह्म का ही उपक्रम वेदान्त के आरम्भ से किया गया है। यदि मायावाद होता तो माया का ही उपक्रम किया जाता। स्मार्त्तधर्म वाले कभी भी विषम दशा में नहीं पड़े, किन्तु विषम दशा में गोस्वा० जी आप ही आए हुए हैं॥ जो सिद्धान्त श्रुति स्मृति से निकलता है वही अद्वैत एकात्मवाद भगवद्गीता और श्रीमद्भागवतादि से भी जब सिद्ध है, तब गोस्वामी जैसे लोग बड़े बेढंग फंस जाते हैं कि जिन ग्रन्थों को हम अपने सम्प्रदाय के परमपोषक मूल ग्रन्थ समझते हैं उनसे भी जब हमारे मत से विरुद्ध मत सिद्ध होता है तब कहां जांय क्या करें?। धर्म, कर्म, पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, सभी अपनी २ दशा में सत्य हैं। परन्तु दशान्तर में यदि मिथ्या हैं तो इससे गोस्वामी भी नहीं बचसकते। हमारे

गोस्वामी भी छोटे से बालक रह चुके हैं । क्या बाल्यावस्था युवावस्था की अपेक्षा अज्ञान दशा नहीं है ? छोटी २ कक्षाओं की पढ़ाई बड़ी ऊंची २ कक्षा वालों की दृष्टि में व्यर्थ वा निकृष्ट हो जाती है। जिस मार्ग में होकर हम किसी अत्यन्त अभीष्ट स्थान को जाते हैं वहां पहुंच जाने पर उस मार्ग की सब चीजें हमारे लिये व्यर्थ हो जाती हैं, हमारा उस मार्ग से कुछ मतलब नहीं रहता परन्तु उस मार्ग के विना हम अभीष्ट स्थान में पहुंच कदापि नहीं सकते। इस लिये वह मार्ग सर्वांश में जैसे मिथ्या नहीं वैसे धर्म, कर्म, पाप, पुण्यादि कोई भी सर्वथा व्यर्थ नहीं है। अपने २ अंश में सब सार्थक हैं सब सत्य हैं। सत्य असत्य के विचार में सत्य का लक्षण करने में जब अनेक तर्क वितर्क उठे तब अन्त में यह लक्षण स्थिर किया गया कि—

"सत्यंहितद्भूतहितंयदेव ।"

सत्य वही है जिस का परिणाम प्राणियों का हितकारक हो। इस के अनुसार सत्य को पुष्ट करने वा सत्य को प्राप्त करने अथवा सत्य को सत्य ठहराने के लिये यदि कोई असत्य भी अंश खड़ा किया जाय तो वह असत्य भी सत्य ही है। क्योंकि उस का परिणाम अच्छा हितकारी है। असत्य को पुष्ट वा सिद्ध करने के लिये वा असत्य को सत्य ठहराने के लिये सत्य विचार भी किया जाय तो वह सत्य भी मिथ्या ही माना जायगा। इसी प्रकार यहां भी सत्य ईश्वर वा तत्त्वज्ञान की सिद्धि के लिये होने वाला धर्म कर्मादि सत्य न होने पर भी सत्य ही माना जायगा। सारांश यह है कि धर्म कर्मादि सभी तत्त्वज्ञान होजाने पर ज्ञान दशा में ज्ञानी के लिये निरर्थक होजाने पर भी अपने अंश में नीची कक्षा वालों के लिये सदा ही सार्थक और सत्य रहेंगे। सो यह बात योग सूत्र में स्पष्ट है—

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ॥ योग सू०

अर्थ—कृतार्थ नाम जो संसारी कामों को पूरा कर चुका जिस को पूर्णज्ञान वैराग्य होजाने से संसार के पदार्थों वा कामों से अब कुछ प्रयोजन नहीं रहा उस के प्रति संसार नष्ट वा मिथ्या और सर्वथा निष्प्रयोजन है। उस के विचार में मिथ्या होने से संसार कुछ वस्तु यद्यपि नहीं रहा तथापि जिन को ज्ञान वैराग्यादि कुछ भी नहीं हुए ऐसे साधारण मनुष्यों के लिये संसार के सब काम वैसे ही बने हैं। प्रयोजन यह कि ज्ञान दशा में संसार मिथ्या दीख पड़ने पर भी ज्ञान से पहिले तो सत्य हुई है। और ज्ञान दशा कभी किसी को प्राप्त होती है। तब भी उसी के लिये संसार मिथ्या हो सकता है।

और जब साधारण दशा के मनुष्यादि सदा बने ही रहते है तब उन के लिये संसार के काम तथा पदार्थ भी सदा ही सत्य बने रहते हैं। स्वप्न के पदार्थ जागने पर मिथ्या दीख पड़ने पर भी स्वप्न के समय तो वे सत्य रहते ही हैं। अब भी भारत वर्ष में सैकड़ों विरक्त ज्ञानी ऐसे मिलेंगे जो रुपया, पैसा, सोने, चांदी को धूलि से भी बुरा समझते हों। पर तब भी संसार में क्रोड़ों मनुष्य धन की प्रतिष्ठा करते ही हैं।

और जाली नोट का दृष्टान्त यहां इसलिये नहीं घट सकता कि प्रथम तो दृष्टान्त ही ठीक नहीं है। इस दृष्टान्त के अनुसार जगत् में कोई व्यवहार ही जब नहीं चलता तो अन्यांश का साधक वह दृष्टान्त हो ही नहीं सकता। जब कोई यह कहे गा कि तुम मेरे धोखे में हो इस कारण नोट आदि सच्चा है। इस कथन को सुन कर जब वह जान लेगा कि यह मनुष्य धोखा देने वाला है तो कदापि उस के धोखे में न आवे गा। इसी कारण धोखा देने वाला भी कदापि ऐसा न कहेगा। यदि ऐसा कहे तो उस के पेच में कोई भी न फंसे गा। क्या गोस्वामी जी बता सकते हैं कि मैं चोर वा ठग हूं, ऐसा प्रगट करके चोर ठग लोग चोरी ठगई कर सकते हैं? अर्थात् कदापि नहीं। जाली नोट बता कर रुपया लेने देने का व्यवहार कदाचित् गोस्वामी ने किया कराया हो पर जगत् में हमें एक भी मनुष्य नहीं दीखता जो जाली नोट बता कर उस के रुपया चाहे। सारांश यह निकला कि जो लोग संसार के दान पुण्यादि को अच्छा कह के वा मान कर दान पुण्यादि करते कराते हैं उन की दृष्टि में दान पुण्यादि मिथ्या कदापि नहीं हैं। और जब ज्ञान वैराग्यादि सम्बन्धी उच्च कक्षाओं में दान पुण्यादि मिथ्या दीखने लगते हैं तब वे लोग दान पुण्यादि को अच्छा कह कर कदापि नहीं करते कराते। और यदि कहीं ऐसा भी होता हो कि अपने लिये निरर्थक समझते हुए भी संसार की मर्यादा न बिगड़ने के लिये कोई २ महात्मा उन २ कामों को अच्छा मानते हुओं के तुल्य करते कराते हैं तो यह धोखा देना नहीं है किन्तु सब प्रकार के भिन्न २ अधिकारियों को अपनी २ मर्यादा में स्थित रखने के लिये ऐसा करना अत्यावश्यक है कि जिस से वे लोग अपने कर्त्तव्य से पतित न हो जावें। सो ऐसा करने का उपदेश श्रीकृष्णभगवान् ने स्वयं किया है-

"न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।

जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तःसमाचरन् ॥ १ ॥
नमेपार्थास्तिकर्त्तव्यं त्रिषुलोकेषुकिञ्चन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्तएवचकर्मणि ॥ २ ॥" गीताअ० ३

अर्थ-दान पुण्यादि कर्म के अधिकारियों को ज्ञानोपदेश करके उन की बुद्धि को भ्रम में न डाले किन्तु विद्वान् पुरुष को चाहिये कि नियत आचरण करता हुआ सब उत्तम कर्मों का सेवन करावे। भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन ! तीनों लोक में मुझे कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है क्योंकि ऐसा कोई वस्तु नहीं जिस की प्राप्ति के लिये मैं कर्म करूं किसी प्रकार की इच्छा पूर्ण करने के उद्देश से सभी कर्म किये जाते हैं सो मुझे कुछ भी इच्छा नहीं तौ भी मैं कर्म करने में तत्पर रहता हूं कि जिस से संसार की मर्यादा न बिगड़े। दान पुण्यादि कर्म के संगी लोग जो मुझ को प्रामाणिक मानते हैं वे मुझ को कर्म त्याग करते देख जान कर कर्मों को छोड़ बैठेंगे तो उन की बड़ी हानि होगी। तात्पर्य यह है कि मेरे लिये कर्म धर्म व्यर्थ होने पर भी संसारी अल्पज्ञों के लिये सार्थक हैं। वास्तव में शास्त्रकी मर्यादा का यथार्थ बोध होना अति कठिन है। पाठक महाशय ! आप लोग विचार की दृष्टि से देखोगे तो यह साफ २ ध्यान में जच जायगा कि जो २ वस्तु वा विषय अपने से भिन्न देश काल वा दशा में निरर्थक निष्प्रयोजन वा मिथ्या हो जाते हैं वे सभी अपने २ देश काल में वा अपनी निज दशा में कदापि व्यर्थ वा मिथ्या नहीं होते, यह सर्वत्र का नियम है। रोगी के लिये दवाईखाने तथा शफाखाने सार्थक हैं नीरोगी के लिये व्यर्थ हैं। ग्रीष्म काल में शीत के वस्त्र व्यर्थ होने पर भी शीत काल के लिये सार्थक हैं। क्योंकि शीत के वस्त्र शीत निवृत्ति के उद्देश को लेकर बनाये गये हैं शीताभाव काल में उनके व्यर्थ होने पर भी अपने अंश में वे सदा सार्थक हैं। इसी के अनुसार धर्म, कर्म, पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, ये सब संसार कोटि वा संसार दशा के उद्देश को लेकर शास्त्रानुकूल प्रवृत्त हुए हैं। वे अपने से भिन्न परमार्थ दशा में व्यर्थ भी हों तो अपने अंश में सदा ही सार्थक हैं। इसी विचार के अनुसार सब विद्वान् धर्म कर्मादि को सदा से मानते आते हैं किन्तु जब " हैं तो ये सब मिथ्या, पर तुम माने जाओ किये जाओ " ऐसा गोस्वामी के लेखानुसार कोई भी नहीं मानता तो उनका वैसा लिखना मिथ्या क्यों नहीं हुआ ?। आगे गोस्वामी कहते हैं कि " जो धर्म

परमार्थ में मिथ्या है वह धर्म ही क्या है?। उसके वह धर्म अनुष्ठान से प्रयोजन ही क्या है?" इसका जवाब हम दे चुके हैं कि वह धर्म परमार्थ में मिथ्या होने पर भी अपने अंश में सार्थक तथा सत्य है। और शास्त्रकार भी स्वांश में ही उस को अच्छा वा सार्थक कहते मानते हैं। तदनुसार समझदार लोग भी व्यवहार करते हैं। नाटक का सब सामान नाटक से अन्यत्र व्यर्थ होने पर भी नाटक के लिये सदा सार्थक ही है। बालकों के खिलौने युवावस्था में व्यर्थ हो जाने पर भी बालकों के लिये सार्थक ही रहते हैं। जब युवावस्था के सामान सकामों के लिये बनाये ही गये हैं किन्तु निष्काम पुरुष के लिये बनाये ही नहीं गये तब उनको मिथ्या कहने मानने का लेख केवल निष्काम दशा में ही चरितार्थ होगा किन्तु सकाम दशा में कदापि नहीं। हमारे गोस्वामी को भी यह बात अवश्य माननी पड़ेगी क्योंकि वैष्णव सम्प्रदायों में भी ऐसे २ साधु महात्मा अवश्य मिलेंगे जो स्त्री के दर्शनस्पर्शनादि अष्टविध मैथुन को बुरा समझते हों, सर्वथा कामासक्ति से उदासीन हो चुके हों। इसी कारण स्त्री मात्र के संपर्क को बुरा कहते मानते हों, उनके लिये स्त्री सम्बन्ध बुरा व्यर्थ वा मिथ्या होने पर भी गोस्वामी आदि गृहस्थ वैष्णवों के लिये स्त्री सम्बन्ध सदा सार्थक ही रहेगा। इसी के अनुसार स्वर्ग अपने स्वांश में कदापि मिथ्या नहीं है। और परमार्थ रूप दशान्तर के उद्देश से स्वर्ग की प्रवृत्ति ही नहीं इसी कारण वहां मिथ्या होने पर भी स्वर्गादि स्वांश में कदापि निरर्थक नहीं ठहरते। शास्त्र मर्यादा के न जानने से गोस्वामी को यह सब भ्रम हुआ है॥

गोस्वामी—मनु ने लिखा तो यह है कि—जहां श्रुति और स्मृति का विरोध हो वहां श्रुति का प्राबल्य है। पर यहां पर यह शंका होती है कि जब श्रुति का अर्थ ले कर स्मृति बनाई गई है, तब श्रुति से विरोध कैसा, कहीं टीका और मूल का विरोध होता है? कहीं अर्थ का पाठ से विरोध होता है?। यह कैसा स्मृति शास्त्र, जहां श्रुति से विरोध है।

स्मृति से विरोध होने पर श्रुति को मानना, यह चाहे मनु को मान्य हो; पर आज कल के 'स्मार्त्तबाबू' ऐसा नहीं करते हैं। वेद में एक श्रुति मिलती है जिस में शिखा मुंड़ाना लिखा है। सो शिखा का मुंड़ाना ही नहीं लिखा प्रत्युत शिखा को पापरूप लिखा है॥

समाधान—गोस्वामी यहां बहुत गिर गये हैं। उन को यह खबर भी

नहीं है कि मनु ने क्या लिखा है। हमारा अनुमान है कि गोस्वामी ने मनुस्मृति का आद्योपान्त पूरा २ कभी पाठ भी नहीं किया होगा। अन्यथा ऐसा कभी नहीं लिखते कि "श्रुति स्मृति विरोध में श्रुति का प्राबल्य है" यद्यपि यह बात पूर्व मीमांसा के श्रुति प्राबल्याधिकरण में तथा अन्य स्मृतियों में भी लिखी होने से सब सनातन धर्मियों को निर्विकल्प मान्य है तथापि मनुस्मृति में ऐसा लेख बताना गोस्वामी की भूल अवश्य है। श्रुति का अर्थ देख २ कर स्मृतियां नहीं बनायी गयीं हैं इसी कारण श्रुति की टीका स्मृतियां नहीं हैं। यदि गोस्वामी को यह बोध होता कि प्रस्थान उद्देश वा विषय श्रुति स्मृति दोनों का भिन्न २ है और मूल तथा टीका का विषय भेद कदापि नहीं हो सकता। तब ऐसा कदापि नहीं लिखते। क्योंकि जिस विषय का वर्णन मूल में होता है उसी का समर्थन टीका भी करती है व्याकरण का टीका वा भाष्य व्याकरण ही रहेगा किन्तु टीका में न्याय वेदान्तादि विषय नहीं होगा। इसी के अनुसार यहां भी यदि स्मृतियां वेद की टीका रूप होतीं तो दोनों का एक ही विषय होता। परन्तु पूर्वज महर्षि लोगों ने श्रुति स्मृति का विषय पृथक् २ माना है। देखो गौतमीय न्यायदर्शन—अ० ४। आ० १। सूत्र ६२ पर वात्स्यायनीय न्यायभाष्य—

"विषयव्यवस्थानाच्च यथाविषयं प्रामाण्यम्। अन्यो मन्त्रब्राह्मणस्य विषयो ऽन्यश्चेतिहासपुराणधर्मशास्त्राणामिति। यज्ञो मन्त्रब्राह्मणस्य, लोकवृत्तमितिहासपुराणस्य, लोकव्यवहारव्यवस्थापनं धर्मशास्त्रस्य विषयः। यथाविषयमेतानि प्रमाणानीन्द्रियादिवत्" ॥

भावार्थः—विषयों के पृथक् २ होने से अपने २ विषय में वेदादि शास्त्र प्रमाण हैं। मन्त्र ब्राह्मणरूप वेद का विषय यज्ञ, लोक नाम संसार वा संसारस्थ मनुष्यादि का वृत्त नाम हालात लिखना इतिहास पुराणों का विषय है। और सांसारिक व्यवहार की व्यवस्था बांधना वा मर्यादा नियत करना कि ऐसी २ दशा में ऐसा २ व्यवहार कर्त्तव्य है यह धर्मशास्त्र का विषय है। स्मृति और धर्मशास्त्र एक ही के नाम हैं। जैसे चक्षु रूप देखने में तथा श्रोत्र शब्द सुनने में प्रमाण है अन्य इन्द्रिय के विषय में अन्य प्रमाण नहीं, वैसे ही श्रुति स्मृति पुराण भी अपने २ विषय में ही प्रमाण हैं। जब

श्रुति स्मृति दोनों के विषय भिन्न २ हैं तो कोई किसी की टीका नहीं अपने २ विषय में दोनों ही प्रामाणिक हैं। अब रहा यह कि इन का परस्पर क्या सम्बन्ध है? तब उत्तर यह है कि यद्यपि श्रुति का विषय यज्ञ का वर्णन ही प्रधान है तथापि सिंहावलोकित न्याय से श्रुति लोक व्यवहार को भी इङ्गित चेष्टित से संकेत मात्र कहीं २ कुछ दिखाती है। वहां श्रुति के अभिप्राय को लेती हुई ही व्यवहारांश का वर्णन करने वाली स्मृतियां प्रायः चलती हैं। इसी अभिप्राय से यह कहा गया कि—

"श्रुतेरिवार्थं स्मृतिरन्वगच्छत्।" रघुवंशे।

महर्षि लोगों के मुखारबिन्द से स्मृतियां निकलीं तब श्रुतियों को देख २ कर नहीं कहीं वा लिखीं गयीं तथा वे सर्वथा वेदानुकूल ही निकली हैं क्योंकि उन महर्षियों के रोम २ में वेद के संस्कार विद्यमान थे। इस दशा में वेद की विशेष प्रतिष्ठा स्थापित रखने तथा वेद को अपौरुषेय स्वतःप्रमाण ठहराने के लिये उन्ही महर्षियों ने यह व्यवस्था भी स्थापित कर दी है कि—यदि कभी ऐसी शंका उपस्थित हो जाय (क्योंकि शंका करने वाले सभी प्रकार की शंका उपस्थित करने लगते हैं) कि श्रुति स्मृति दोनों में कभी कहीं किसी कारण विरोध प्रतीत हो तो प्रत्यक्ष श्रुत्यर्थ का प्रमाण वहां मानो और अनुमित स्मृति वाक्य को वहां मत मानो। जिस का विचार कहीं कभी भी अन्यथा न हो सके यही श्रुति का श्रुतिपन है। यदि यही लक्षण स्मृति में घट जाता तो स्मृति का मनुष्य कृत होना वा परतः प्रमाण मानना भी कैसे सिद्ध करते?। और यह भी ध्यान रहे कि जैसा गोस्वामी मान बैठे हैं वैसे श्रुति स्मृति में विरोध नहीं है किन्तु विरोधाभास को शास्त्र मर्यादा के न जानने वाले पण्डितम्मन्य अनेक लोग विरोध मान बैठते हैं वैसी ही दशा हमारे गोस्वामी की है। अच्छे विद्वानों का काम होता है कि सामान्य विशेष वा उत्सर्गापवादादि (आम और ख़ास) से विरोध को हटा कर शास्त्र के अर्थ की व्यवस्था लगा देते हैं। यदि कभी व्यवस्था कुछ न लगे वा जब तक विरोध का कुछ परिहार न दीख पड़े तब तक श्रुति स्मृति के विरोध में श्रुति को प्रबल समझो। अथवा लेखकादि के प्रमाद से स्मृति में श्रुति विरुद्ध कोई बात प्रविष्ट हो गयी हो जिस का प्रक्षिप्त ठहराना भी दुःसाध्य हो तो वहां के लिये भी श्रुतिप्राबल्याधिकरण का विचार विशेष सार्थक जानो। आगे गोस्वामी क-

हते हैं कि " श्रुति स्मृति के विरोध में श्रुति का मान्य करना यह मन्वादि का मन्तव्य भले ही हो, पर स्मार्त्तबाबू ऐसा नहीं मानते " सो यह गोस्वामी का बड़ा प्रबल अज्ञान है। आश्चर्य यह है कि अपने अज्ञान का दोष सैकड़ों स्मार्त्त विद्वानों पर झोंकना चाहते हैं। जैसे कोई अन्धा अपने को कुछ न दीखने से संसार भर को अन्धा समझे वैसी दशा हमारे गोस्वामी की है। हमारे गोस्वामी कहते हैं कि वेद में शिखा को पाप रूप कहा और उसका मुड़ाना लिखा है परन्तु स्मार्त्त लोग शिखा को अच्छी मानते और मुड़ाते नहीं। गोस्वामी इस पर वेद प्रमाण देते हैं कि—

गोस्वामी—सामवेदताण्डयमहाब्राह्मण ॥

"शिखा अनुप्रवपन्ते पाप्मानमेव तदपघ्नते लघीयाꣳसः स्वर्गलोकमयामेति ॥" ४ अध्याय। १० खण्ड ॥

अर्थ—चुटैया मुड़ाते हैं सो अपने पाप्मा को नाश करते हैं। लघु (हलके) होकर स्वर्ग में जांयगे, इस भाव से; देखिये वेद में तो चुटिया मुंड़ाना लिखा है, पर स्मार्त्तों को चुटैया का यहां तक आग्रह है कि जिसके चुटिया न हो उसको हिन्दू कहने में भी संकोच करते हैं। और स्मार्त्तग्रन्थों में यहां तक आग्रह है कि—

"खल्वाटत्वादिदोषेण विशिखश्चेन्नरोभवेत्।
कौशींतदाधारयीत ब्रह्मग्रन्थियुतांशिखाम् ॥"

अर्थ—जो नर खल्वाट (गंजा) आदि दोष से विशिख (विना चुटिया का) हो तो ब्रह्म ग्रन्थिवाली कुश की चुटिया लगा लेवे। धन्य है स्मृति की चुटिया का आग्रह! धन्य श्रुतिस्मृति के विरोध में स्मृति का मान्य! श्रुति कहती है मुंड़ा डालो, चुटिया पाप है, स्मार्त्त कहते हैं न हो तो कुशा की लगा लो, चुटिया विना न रहो॥

समाधान—इस अज्ञान ग्रस्त शंका को निवृत्त करने के लिये जो यथार्थ सत्य २ व्यवस्था हम आगे लिखेंगे उसको तो पाठक लोग देखें ही गे। परन्तु हमे निश्चय है कि हमारे गोस्वामी भी अपने को वेद मतानुयायी मानते और शिखा सूत्र दोनों ही धारण करने वाले हैं और वे अपने को ब्राह्मण तथा हिन्दू भी मानते हैं। गोस्वामी आर्यसमाजी भी नहीं क्योंकि आर्यसमाजी होते तो वैष्णव सम्प्रदायों को अच्छा कभी नहीं मान सकते। तथा

ईसाई मुसलमान भी नहीं हैं। तब क्या वे चुटिया रखना अच्छा मानते हैं ? वा वेद में लिखे अनुसार चुटिया रखने को पाप समझते हैं ?। यदि चुटिया रखना अच्छा मानते और स्वयं शिखाधारी हैं तो अपने लेखानुसार वे स्वयं वेद विरोधी सिद्ध हो गये और स्मार्त्तों की कोटि में आ गये। अथवा गोस्वामी ने शिखा रखना वेद विरुद्ध समझ के चोटी कटा दी होगी तो आज कल के 'जंटलमेनों' के मत में हो गये होंगे। हमारा विश्वास है कि सभी वैष्णव सम्प्रदायी ब्राह्मण लोग अपने को ब्राह्मण मानते 'चुटिया भी रखते' सन्ध्या करते, चुटिया में गांठ भी लगाते हैं। जब ये सब बातें गोस्वामी को स्वयं अपने लिये भी मन्तव्य हैं। तब यदि उन से ही कोई आर्यसमाजी आदि कुतर्की यही प्रश्न करे कि जब तुम्हारे वेद में चुटिया का रखना पाप लिखा और मुंड़ाने की आज्ञा है तब तुम चुटिया क्यों रखते हो। और ऐसी दशा में रखते हो तो वेद विरोधी क्यों नहीं हुए ?। ऐसी शंका का समाधान गोस्वामी को स्वयं करने पड़े तब क्या जवाब देंगे ?। हमारी राय में ऊपर लिखा श्रुतिस्मृति का विरोध वही दिखा सकता है जो स्वयं वेद का तथा हिन्दु मत का विरोधी हो। हमें बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसा प्रश्न लिखते छपाते गोस्वामी को लज्जा संकोच क्यों नहीं हुआ ? कि हम से ही यह प्रश्न कोई पूछे तो क्या उत्तर देंगे ?। स्मरण रखना चाहिये कि वैतण्डिक बनने से भी काम नहीं चलेगा। आप को अपना मत अवश्य बताने पड़ेगा।

अस्तु अब हम इस विवाद को न बढ़ाके गोस्वामीकृत आक्षेप का असली समाधान लिखते हैं।

वेदमतानुयायी सनातनधर्मी लोगों को श्रुति स्मृति के अनुसार ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम अनादि काल से माननीय चले आते हैं। इन आश्रमों में से गृहस्थाश्रम में शिखा का रखना अत्यावश्यक तथा निर्विकल्प है। चारों वेद उन की सब शाखा तथा सब कल्प सूत्रों और सब स्मृतियों की एक ही राय मिलेगी कि गृहस्थ द्विज को शिखा अवश्य धारण करनी चाहिये। इसी के अनुसार स्मृति नामक धर्मशास्त्रों में शिखा रखने तथा गांठ देने का जो आग्रह किया गया है वह सब गृहस्थ के लिये है। और ऋषिऋण, देवऋण, पितृऋण, इन तीन प्रकार के ऋणों के चुकाने का विशेष भार गृहस्थाश्रम पर ही है। ऋषि ऋण चुकाने का

चिन्ह शिखा है क्योंकि ब्रह्मयज्ञादि ऋषियज्ञ के काम शिर के साथ विशेष कर संबद्ध हैं। देवऋण का चिन्ह यज्ञोपवीत है। और पितृऋण का चिन्ह मेखला [कन्धनी] है जो कटिभाग में बालक को उत्पन्न होने पश्चात् ही पहराना आरम्भ किया जाता है। ये ऋण सम्बन्धी काम गृहाश्रम में ही विशेष कर होते और हो सकते हैं। इसी कारण वेदोक्त कर्मकाण्ड का भाग गृहस्थ पर ही निर्भर रक्खा गया है इस से गृहस्थ द्विज को सर्व शाखों की आज्ञा होने से शिखा अवश्य रखनी चाहिये यह अटल सिद्धान्त है। अब शेष रहे तीन आश्रम उन में से वानप्रस्थ के लिये यद्यपि वेदोक्त कर्मकाण्ड का विधान है तथापि गृहस्थ से कम है और उस को शिर पर तथा डाढ़ी मूछ आदि सब बाल रखाने की आज्ञा है तब शिखा भी सब केशों में निश्रित रहेगी।

बाकी रहे ब्रह्मचारी और संन्यासी इन के लिये शिखा रखना विकल्पित है। चाहे यों कहो कि किसी वेद की किसी शाखावालों को शिखा मुंड़ाने का विधान है किसी शाखावालों को शिखा रखने का विधान है। इसलिये जिन २ वेद तथा शाखावालों को उपनयन के वा अन्य संस्कार के समय शिखा मुंड़ा देने का विधान हो उन को अवश्य मुड़ा देना चाहिये। सामवेद की तारण्डयशाखानुसारी ब्राह्मण यदि कोई हों तो उन को अपनी शाखा के अनुसार शिखा अवश्य मुड़ानी चाहिये। यह भी स्मरण रहै कि जब ब्राह्मणों के वेद, शाखा, सूत्र, प्रवर गोत्र भिन्न २ हैं तब सब काम सब के लिये नहीं हो सकते किन्तु अपने शाखा सूत्रादि के अनुसार उन २ को कर्मकाण्ड की प्रक्रिया का सेवन करना चाहिये। इसीलिये भिन्न २ वेद तथा शाखाओं में दोनों प्रकार के लेख मिलते हैं। मनु जी ने भी यही कहा है कि—

"श्रुतिद्वैधंतुयत्रस्यात्तत्रधर्मावुभौस्मृतौ"।

जहां दो प्रकार की वेदश्रुति मिलती हो वहां उस २ शाखा वाले के लिये वे दोनों धर्म कर्त्तव्य हैं किन्तु एक के लिये परस्पर विरुद्ध दो धर्म नहीं हैं। सामवेद के ताण्डय महाब्राह्मण में जो शिखा मुड़ाने का विधान है उस का अर्थवाद यह है कि जो शिखा को काटते हैं यह पाप का बोझा उतार के हल के होना है। वहां ब्राह्मणग्रन्थ में सत्रयज्ञ का विषय है। ब्रह्मचारी भी अन्यश्रुतियों के प्रमाणानुसार सत्रयज्ञ का दीक्षित है।

वेदप्रकाश का मिथ्यापन ॥

हम अपने पूर्व लेखों में कई वार लिख चुके और प्रत्यक्ष असत्य मिथ्या लिखना वे० प्र० आदि का सिद्ध कर चुके हैं। तदनुसार मुस्तफ़ापुर धर्मसभा के विषय में वे० प्र० का लिखना कुछ सत्य है वा नहीं, यह कुछ भी नहीं कह सकते। यदि कदाचित् कोई बात सत्य भी हो तो वह दोष किसी खास मनुष्य का होगा। उस से सनातन धर्म पर कुछ आक्षेप नहीं हो सकता। इस भारत वर्ष के सुधार की कभी कुछ आशा थी वा है तो वह परस्पर के वैर विरोध फूट के मिटने से ही हो सकती है। जब तक विरोध बढ़ता जायगा तब तक देशोन्नति के लिये जो विचार वा प्रस्ताव जहां कहीं होंगे वे सब निष्फल जांयगे। वर्त्तमान समय में सर्व्वोपरि विरोध का बढ़ाने वाला यह आर्यसमाज है। अब तक भिन्न २ मत वाले समुदायों में ही विरोध होता था पर अब इस आर्यसमाज ने घर २ में विरोध फैला दिया। भाई २ पिता पुत्र पति पत्नी में से एक को समाजी कर लिया एक सनातन धर्मी बना है। इस से घर २ में महान् कलह दुःख बढ़ गया है। दुःख से बचने की कोई आशा नहीं है।

ब्रह्मचर्याश्रम ॥

इस पहिले आश्रम का नाम मात्र रह गया है। यद्यपि अन्य युगों के तुल्य इस आश्रम के उत्तम कर्मों का अनुष्ठान इस घोर कलिकाल में कदापि नहीं हो सकता। तथापि जो कुछ थोड़ा सा हो सकता था तथा व्यभिचार विषयासक्ति पूर्व से ऐसी नहीं बढ़ी थी कि जैसी स्वा० दयानन्द स० के लेखों और आर्यसमाजियों के पग २ में बात २ में नियोग के हल्ला ने तथा विवाह होते ही उसी समय कन्या वर को समागम करने की आज्ञा ने बढ़ा दिया है। ऐसी दशा में ब्रह्मचर्य आश्रम की आशा कैसे हो सकती है?। गुरुकुल नाम से खोली पाठशालाओं में जब ये सत्यार्थ प्र० आदि पुस्तक पढ़ाये जावेंगे। कि जिन में व्यभिचार की बातें भरी पड़ी हैं तब शोचिये वे विद्यार्थी कैसे ब्रह्मचारी होंगे?। हमारी राय में तो सनातन धर्मी लोगों को ब्रह्मचर्याश्रम रक्षा की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि सनातन धर्मी द्विज लोगों के बालकों को २० वा २५ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्याश्रम के शुद्ध नियमों के साथ शास्त्र मर्यादा के अनुसार

वेदादि शास्त्र पढ़ाये जावें। इसके लिये उचित तो यह है कि नगर २ में एक ही नियमों के साथ अनेक पाठशाला नियत हों और वहां उपनयन संस्कार करा २ के द्विजों के बालक भेजे जावें तो आशा है कि समाजियों के फैलाये व्यभिचार वर्धक हल्ला से सनातन धर्मी लोगों के बालक बचें। इस के लिये हम आगे २ कुछ अच्छा विचार लिखेंगे। और ब्रह्मचर्य के नियमों का एक छोटा सा समयोपयोगी पुस्तक शीघ्र लिखकर छपावेंगे।

महावीर पात्र ॥

वे० प्र० २४४ पृष्ठ में महावीर पात्र दिखा कर दशाङ्गुल यज्ञ प्रतिमा रूप महावीर का निषेध करने की चेष्टा की है। पाठकगण! शोचिये यह कैसा अनर्थ है। हम पहिले अङ्कों में शतपथ के स्पष्ट प्रमाणों से यज्ञात्मक प्रजापति की दशाङ्गुल प्रतिमा के बनाने, उस में मुख नासिका की कल्पना करने, उस को धूप देने आदि के सभी विचार लिख चुके हैं। इन लोगों को यह भी बोध नहीं कि प्रवर्ग्य नामक कर्म क्या होता है? वे महावीर प्रतिमा का खण्डन करने को चले, यह कैसा आश्चर्य है ?। यदि तु० रा० जानते हों कि महावीर कोई यज्ञ का पात्र वास्तव में है, तो यही बतावें कि इस पात्र से क्या काम होता है ? यदि कहें कि फिर सायणाचार्य वेदभाष्य कार ने महावीर को पात्र क्यों लिखा ? तब उत्तर यह है कि " पातयन्त्यस्मिन् गोपय आदि– इति पात्रम् " जिस पर गोदुग्धादि का पतन किया जाय इस से महावीर प्रतिमा को पात्र लिखना अन्वर्थ है। तथा चापस्तम्बीय श्रौत कल्पे अध्याय १५ कं० १० सूत्र १

इन्द्राश्विनामधुनः सारघस्येति महावीरे गोपय आनयति १

अर्थ–(इन्द्राश्विना०) मन्त्र से महावीर पर गौ का दूध छोड़े। इसी प्रकार (ज्योतिर्भा असि ०) मन्त्र से मधु–(शहद) और (वाजिनं त्वा०) मन्त्र से महावीर नामक प्रतिमा पर दही चढ़ावे यह कण्डिका १४ के १० द-शवें सूत्र में लिखा है। और इसी १४ वीं कण्डिका के नवम सूत्र में महावीर प्रतिमा को आदित्य के रूप में गोलाकार बनाने को लिखा है तथा १५ वीं कण्डिका के प्रथम सूत्र को देखिये—

अथ यदि पुरुषाकृतिं करिष्यन्स्यात्समानमाप्रथमस्यो-पात्रहरणात्। अत्रैवेतरावुपावहृत्य शिरसो रूपं करोति।

अप्रच्छिन्नाग्रं वेदमुपरिष्टान्निदधाति शिखाया रूपम्। अभितोदोग्ध्रेकर्णयोरूपम्। अभितो हिरण्यशकलावाज्यस्रुवौ वाक्ष्यो रूपम्। अभितः स्रुवौ नासिकयोरूपम्। प्रोक्षणीधानीं मुखस्य रूपम्। आज्यस्थालीं ग्रीवाणां रूपम्। अभितो धृष्टी जत्रूणां रूपम्। अभितः शफावंसयोरूपम्। अभितो रौहिणहवन्यौ बाहोरूपम्। प्राचीं मेथीं पृष्टीनां रूपम्। अभितो धवित्रे पार्श्वयोरूपम्। मध्ये तृतीयमुरसो रूपम्। मध्य उपयमनमुदरस्य रूपम्। तस्मिन्सर्वं रज्जुमयं समवदधात्यान्त्राणां रूपम्। उदीचीमभिं श्रोण्योरूपम्। अभितः शङ्कू सक्थ्योरूपम्। मध्ये तृतीयं मेढ्रस्य रूपम्। ० ०

अर्थ–यदि महावीर प्रतिमा को पुरुष कीसी आकृति में बनाना चाहे तो तीनों महावीरों को एकत्र कर के प्रथम शिरोभाग का रूप बनावे। फिर अग्रभाग जिन का काटा न हो ऐसे वेद नाम रूप में बनाये कुशों की शिखा नाम चोटी महावीर के शिर में लगावे। शिर में दोनो ओर दोग्ध्र लगावे यही दो कानों का रूप है। शिर में मस्तक भाग से नीचे सुवर्ण के दो टुकड़े वा घी के भरे दो स्रुवा रक्खे यही आंखों का रूप है। नासिका के स्थान में दो स्रुवा रक्खे यही नासिका का रूप है। मुख स्थान में प्रोक्षणीधानी रख के मुख का रूप बनावे आज्यस्थाली को ग्रीवा कण्ठ के रूप में धरे।

इसी प्रकार कंधा, बाहू, पीठ, पसली, छाती, पेट, आंते और कटिभाग आदि मनुष्य के सब अवयव बनाने के लिये स्पष्ट लेख है। पाठक महाशय! अब सोचिये कि वे०प्र० सम्पादक का लिखना कैसा मिथ्या है कि जब महावीर प्रतिमा को पुरुष नाम मनुष्य के आकार में बनाने के साथ मनुष्य के सब अङ्ग शिर, आंख, नाक, कान आदि बनाने को कल्प सूत्रकार ने लिखा है तब क्या इस में भी कुछ चालाकी चल सकती है?। महावीर शब्द से हनुमान् की प्रतिमा हम ने कभी कहीं नहीं लिखी किन्तु यज्ञात्मक प्रजापति की प्रतिमा महावीर नाम रूप से बनायी जाती है-यह बात हम ने मन्त्र ब्राह्मण दोनों से सिद्ध कर दी है। अब आशा है कि इस महावीर प्रतिमा

को तु०रा० ठीक मान कर अपना पराजय स्वीकार करेंगे। क्योंकि अब तु० रा० घिर गये हैं किधर ही भागने का अवकाश रहा नहीं है। हमें बड़ा विस्मय होता है कि जब ये समाजी लोग यज्ञ का शिर पैर कुछ नहीं जानते तब अज्ञात विषय में क्यों टांग अड़ाते हैं?।

स्वर्ग नरक वा (सुख दुःख)॥

वे०प्र० २४४। २४५ पृष्ठ में तु०रा० लिखते हैं कि स्वर्ग नरक कोई स्थान विशेष नहीं किन्तु स्वर्ग नाम सुख का और नरक नाम दुःख का है। सो यह बड़ा भारी अज्ञान है। हम वेदादि शास्त्रों के सैकड़ों प्रमाणों द्वारा यह सिद्ध कर देंगे कि स्वर्ग नरक स्थान विशेष के नाम हैं। और स्वा० दयानन्द का तथा तु०रा० का लेख भी उन के इस लेख से विरुद्ध दिखादेंगे। परन्तु प्रथम तु०रा० यह स्वीकार लिखदें कि हम अपना पराजय वैसा होने पर मान लेंगे याज्ञवल्क्यस्मृति का नाम लिख कर लोगों को धोखा दिया है। और टीका का संस्कृत नीचे लिख दिया है। वह प्रकरण देखा जाय तब कह सकते हैं कि टीका में भी किस विचार से लिखा है परन्तु टीका टिप्पणी का समाधान करना हमारा काम नहीं है। आ०समाजी लोगों को उचित तो यह है कि आगे २ शास्त्र मर्यादा से अधिक २ हटने के लिये पग न बढ़ावें। ये लोग शास्त्र को छोड़ कर मन माने मिथ्या सिद्धान्त को सत्य सिद्ध करने के लिये जितना २ भागेंगे उतना २ ही गिरते जावेंगे। स्वर् तथा स्वर्ग एकार्थ हैं इस के लिये वेदादि ग्रन्थों में अनेक प्रमाण मिलेंगे। और भूर्भुवःस्वः। इन तीन व्याहृतियों पर उपनिषदादि ग्रन्थों में बहुत प्रकार के विचार लिखे गये हैं जैसे:-

भूरिति वा अयं लोकः। भुवइत्यन्तरिक्षम्। स्वरित्यसौ लोकः। भूरिति वाअग्निः। भुवइति वायुः। स्वरित्यादित्यः। भूरिति वा ऋचः। भुवइति सामानि। स्वरिति यजूंषि। भूरिति वै प्राणः। भुवइत्यपानः। स्वरितिव्यानः॥ तैत्तिरीयोपनिषदि शिक्षाध्याये।

अर्थ-दिव्लोक, आदित्य, यजुर्वेद और व्यान का नाम यहां स्वः वा स्वर्ग है। तु०रा० से पूछना चाहिये कि क्या ये दिव्लोकादि सुख के पर्याय वाचक शब्द हैं? ऐसा तुम कह सकते हो?। यदि हैं, तो किस प्रमाण से?। यदि नहीं हैं, तो मिथ्या पक्ष क्यों लेते हो?। क्या मिथ्या के ठेकेदार हो?।

वे० प्र० पृ० २५४ से आगे तु० रा० का एक संस्कृत व्याख्यान छपा है। लिखते हैं कि यह व्याख्यान बनारस में हुए प्रतिनिधि सभा के उत्सव पर तु० रा० ने दिया था। सो यह मान लिया जाय कि वही व्याख्यान छपाया गया कि जो बनारस में दिया था तो शंका यह होगी कि क्या संस्कृत व्याख्यान को कोई मनुष्य, सभा में लिखता गया था ?। क्या व्याख्यान का शुद्ध संस्कृत क्रमशः लिखने वाले लेखक कोई आ० में हैं ?। यदि कोई हां कहे तो किसी पण्डित के संस्कृत व्याख्यान को लिख कर किसी सभा में दिखावे। हम सत्य कहते हैं कि तु० रा० को शुद्ध संस्कृत लिखने और बोलने का वास्तव में बोध नहीं है। यह संस्कृत पहिले से ही लिख कर किसी सुबोध से शुधवा के घोख लिया है घोखा हुआ सभा में बोला और फिर छपा दिया है। इस बात को अनेक आर्यसमाजी भी जानते हैं कि तु० रा० संस्कृत में अध कचरे हैं। परन्तु मूर्ख मण्डली में पण्डित बनने के लिये यह लेख छपाया है। हम से एक आर्यसमाजी उपदेशक ने बहुत साफ कहा था (यह बात बनावटी नहीं किन्तु सर्वथा सत्य है) कि सनातन धर्मी और आर्य समाजी प्रायः सभी धर्मोपदेशक ऐसे ही हैं जो वेद शास्त्र का मर्म वा सिद्धान्त वास्तव में ठीक नहीं जानते इसी कारण उन लोगों के उपदेश प्रायः अनेक अंशों में अपने २ मन्तव्य से विरुद्ध होते हैं। और वे जानते हुए भी अपने मन्तव्य से विरुद्ध अनेक बातें व्याख्यानादि में कह जाते हैं जिनको समझने विचारने वाले दोनों ही पक्ष के श्रोता लोगों में बहुत कम हैं। यदि कोई २ समझता भी है तो वह वैर विरोध बढ़ने के भय से चुप हो जाता है। और दोनों ही पक्षों की सभाओं की दशा वास्तव में धर्मानुकूल नहीं है। आर्य समाजी उपदेशक अपने सिद्धान्त से विरुद्ध चाहे जो कुछ सभा में बक जावे उस पर किसी का ध्यान नहीं होगा परन्तु वह स्वा० दयानन्द की प्रशंसा बीच २ में कई वार जोर शोर से करदे तो उसका व्याख्यान बहुत अच्छा हुआ कहा वा माना जायगा। अनेक उपहास के दृष्टान्तों पर ताली पिटेंगी। तथा सनातन धर्मी उपदेशक अपने मन्तव्य से विरुद्ध चाहे जो कहे परन्तु भगवान् रामजी वा श्री कृष्ण जी की थोड़ी बहुत प्रशंसा करदे इधर उधर के दृष्टान्त सुना के ताली पिटवा दे बस उसका व्याख्यान बहुत अच्छा कहा माना जायगा। वही बड़ा पण्डित समझा जायगा। आर्यसमाजियों में तो संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं ही नहीं किन्तु प्रायः अध कचरे ही मनुष्य पं०

बन बैठे हैं (निरस्तपादपेदेशे एरण्डोऽपि द्रुमायते) परन्तु सनातन धर्मियों में बहुत अच्छे २ धुरन्धर विद्वान् एक से एक बड़े विद्यमान हैं। सो अच्छे पण्डितों का व्याख्यान यदि कहीं कभी वेद शास्त्रों के गूढ़ांशों पर होता भी है तो उसके समझने वाले संसार में श्रोता कम होते हैं। उसमें रोचकता भी कम होती इससे विद्वान् पण्डितों की प्रतिष्ठा भी कम होती है। यदि अध कचरे उपदेशकों की बराबर प्रतिष्ठा भी की जाय तो भी विद्वानों का अपमान एक प्रकार से हो जाता है इस कारण अच्छे विद्वान् लोग प्रायः सभाओं में नहीं जाते। प्रयोजन यह है कि मनुष्यों की दशा तो प्रायः सर्वत्र काम क्रोध लोभ और स्वार्थ ग्रस्त है। इसी कारण निष्पक्ष धर्म का विचार कहने सुनने वाले दोनों ही पक्षों में कम हैं। पर आ० समाज का मत प्रायः वेदशास्त्र से विरुद्ध और सनातनधर्म वेदानुकूल है यह ठीक है। यह ऊपर लिखी बात हम भी ऐसी ही निष्पक्ष ठीक समझते हैं। पाठकगण ! सत्य बात कुछ कठोर तो हो जाती है। इसी लिये कदाचित् आप को ऊपर लिखा विचार अच्छा न लगे तो हम पर अप्रसन्न न हों किन्तु शोच विचार कर अनुभव द्वारा निश्चय करें कि हमारा लिखना कहां तक सत्य है। हमारा मुख्य प्रयोजन तो यह था कि संस्कृत में छपा तु० रा० का व्याख्यान आ० समाज के सिद्धान्त से बहुत विरुद्ध है। सो देखिये—स्वा० दयानन्द का मत है कि (सोमोददृगन्धर्वाय०) (सोमः प्रथमो विविदे०) इन मन्त्रों के प्रमाण से स्त्री ११ ग्यारह तक पुरुषों के साथ नियोग करे। ग्यारह में पहिले का नाम सोम, दूसरे का नाम गन्धर्व, तीसरा अग्नि नाम अत्यन्त गर्म और चौथे आदि मनुष्यज कहाते हैं। अब तु० रा० अपने व्याख्यान में सोमादि को भौतिक देवता लिखते हैं। सो यह गोलमाल है कि भौतिक देवता कौन और अभौतिक कौन हैं ?। यदि वे सोमादि देवता चेतन हैं जो कि विवाह से पहिले कन्या को भोगते और एक दूसरे को देते हैं तब तो तु०रा० अपने मत से विरुद्ध सनातनधर्मानुकूल देवता मान लेने से 'मतानुज्ञारूप' निग्रह स्थान में आगये। यदि वे सोमादि देवता जड़ वस्तु हैं तो जड़ भोक्ता कैसे हुए ?। और जड़ पदार्थ एक दूसरे को देने दिलाने का भी व्यवहार नहीं कर सकते। किसी प्रकार से भी देवता मानो तो नियोग में ११ ग्यारह तक पति करने का पक्ष कटा जाता है। और नियोग पक्ष का दयानन्द लिखितार्थ मानो तो रजोदर्शन होने पर विवाह का विचार मूल से ही कट गया। यदि कहो कि हम सना-

तनधर्म के मतानुसार रजोदर्शन होने पर विवाह करना सिद्ध करते हैं तो उत्तर यह है कि सनातनधर्म का मर्म जानने के लिये प्रथम कहीं पढ़ो। जब सनातनधर्म के शास्त्रों का तत्त्व जानते ही नहीं तब उस पर लिखो ही गे क्या। वेद मन्त्र और स्मृति के श्लोकों की संगति बहुत सहज में लग सकती है। यह नियम है कि जो वस्तु बाहर निकलता है वह प्रथम भीतर शरीर में उसी रूप का बन जाता है कि जैसा बाहर दीखेगा। इसी के अनुसार कन्या के शरीर में भीतर प्रथम आर्त्तव नामक रक्त धीरे २ संचित होता है वैसे ही बाहर दीखने से पहिले शरीर के भीतर कुच भी अपने पूर्वरूप में हो जाते हैं उस समय सोम गन्धर्व और अग्नि देवता कन्या के रक्षक होते हैं। मनुष्यों को न दीखने पर भी सूक्ष्म व्यापक सर्वज्ञ होने से देवताओं को ज्ञात है कि इस के शरीर में रोमादि प्रगट हो गये हैं। मनुष्य अल्पज्ञ होने से रजस्वला होने पर रज को देख सकता है। आर्त्तव रक्त बाहर निकलने का नाम रजस्वला होता है उस से पहिले कन्या का विवाह कर देना चाहिये इस प्रकार श्रुतिस्मृति दोनों की व्यवस्था ठीक लग जाती है। प्रयोजन यह कि रजोदर्शन होने पर विवाह करे यह किसी वाक्य से नहीं निकलता। जब कि रजस्वला होने पर विवाह करे तो पाप लगता है इस पर मन्वादिस्मृतियों में सैकड़ो प्रत्यक्ष प्रमाण विद्यमान हैं तब उन की संगति लगाये विना मिथ्या ज्ञापक खड़े करके रजोदर्शन के बाद विवाह लिखना क्या बुद्धिमानों के सामने घृणास्पद नहीं है? श्रुतिस्मृति आदि शास्त्रों की संगति लगाने में कुछ पण्डिताई का भी काम है। जब रजोदर्शन होने पर विवाह करना शास्त्र तथा युक्ति से सिद्ध ही नहीं होता तब इसी अंश को भूल मानकर आगे का सब लेख तु०रा० का बालू की भीत के समान बैठ गया जानो। ऋतु कालाभिगमन का अवधारण न होने और ऋतुकाल से भिन्न समय में निषेध वाक्य न मिलने से विवाहानन्तर तीन आदि दिन के पश्चात् संयोग सब दशा में हो सकता है। और जब स्वा०दयानन्द का कल्पित मत है कि जिस दिन विवाह हो उसी दिन उसी समय दोनों का संयोग कराया जाय तब उस से विरुद्ध गृह्यसूत्रकारों के मतानुसार तीन दिन आदि के बाद संयोग का स्वीकार करना क्या आर्यसमाजी सिद्धान्त से तु०रा० का डिगना नहीं है?। और जो अपने सिद्धान्त का ही शत्रु बन गया वह अन्य किसी पक्ष पर कैसे आरूढ़ हो सकेगा? ॥

जिन २ कन्याओं के विवाह युवावस्था में हुए इतिहास पुराणादि में लिखे हैं वहां यह नहीं लिखा कि अमुक अवस्था में सब वर्णों वा खास २ अमुक वर्ण की कन्या का विवाह करना चाहिये। और यह तो हम भी मानते हैं कि कन्या का विवाह युवावस्था के आरम्भ में होना अच्छा है परन्तु तु० रा० न जाने कन्या की युवावस्था का आरम्भ कब से समझते हैं ?। शोचने का स्थान है कि जब सुश्रुत – आयुर्वेद में १६ वर्ष की स्त्री तथा २५ वर्ष के पुरुष को सम वीर्य माना है तब यह मतलब हुआ कि जो शक्ति पुरुष के शरीर में २५ वर्ष का होने पर प्रकट होती वही शक्ति कन्या में १६ वर्ष पर होजाती है। इसी हिसाब से पुरुष की युवावस्था का आरम्भ जब १६वें वर्ष की अवस्था से होता है तब कन्या की युवावस्था का आरम्भ ११वें वर्ष की अवस्था में होगा। और कन्या की बाल्यावस्था १० वर्ष तक मानी जाय गी भारत वर्ष के सनातनधर्मी विचार शील द्विज लोग प्रायः दश वर्ष के पश्चात् ११ वें वर्ष के आयु में ही विवाह करने का उद्योग भी विशेष कर करते हैं। ११ से १६ वर्ष तक कन्या की युवावस्था और १६ से २५ तकपुरुष की युवावस्था का काल है। ग्यारहवें वर्ष के आरम्भ में ही विशेष कर सोम, गन्धर्व और अग्नि देवता के शरीर में आविर्भूत होने का समय है। वंगदेश में प्रसिद्ध ही १०। ११ वर्ष की कन्या युवति होजाती है। १२ वर्ष की अनेक कन्याओं के सन्तान होते हैं। राजा विराट की उत्तरा कन्या जिसका विवाह अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के साथ हुआ था। वह उत्तरा कन्या अभिमन्यु के देव लोक के समय जब राजा परीक्षित उत्तरा के गर्भ में थे तब १२ वर्ष की थी और अभिमन्यु १६ वर्ष की आयु में मारे गये थे। विवाह दोनों का इस से पहिले हुआ था। इस ऊपर के लेख से यह सिद्ध हुआ कि युवावस्था के आरम्भ में कन्या का विवाह करना चाहिये। हम यह भी पहिले लिख चुके हैं कि कन्याओं का विवाह कम अवस्था में भी हो तो इतनी चिन्ता नहीं क्योंकि पुरुष के निर्बल अल्पायु होने से कन्या विधवा होती हैं। इसलिये पुरुष का विवाह बाल्यावस्था में करने से रोका जाय और बालकों की ब्रह्मचर्य रक्षा पर देश हितैषियों का विशेष ध्यान होना चाहिये। मनु० में लिखा है–

त्रिंशद्वर्षोद्वहेत्कन्यां हृद्यांद्वादशवार्षिकम्।
त्र्यष्टवर्षोष्टवर्षांवा धर्मेसीदतिसत्त्वरः ॥१॥

अर्थः—तीश वर्ष का पुरुष बारह वर्ष की कन्या से तथा २४ वर्ष का पुरुष ८ वर्ष की कन्या से विवाह करले कि जब सपत्नीक हुए विना अग्निहोत्रादि कर्म बिगड़ता हो अर्थात् ऋषियों की आज्ञा पूर्वकाल से यही थी कि अग्निहोत्रादि धर्म करने के लिये विवाह करना विशेष कर मुख्य आवश्यक है। द्वितीय कक्षा में पितृऋण के उद्धारार्थ सन्तानों का होना विवाह का प्रयोजन है। किन्तु विषयासक्त होना विवाह का मुख्य प्रयोजन शास्त्रानुकूल नहीं था। यदि सुयोग्य वर के खोजने में अधिक समय लगजाय और कन्या १६ वा वीश अथवा २५ आदि वर्ष की भी हो जावे तो पितादि को उस के रजस्वला होते रहने का भी पाप नहीं लगेगा। इसी विचार के अनुसार पुराणादि में कहीं २ सोलह वा वीश वर्ष की कन्या का भी विवाह होना मिलेगा। पर वहां यह विधि वाक्य कदापि नहीं मिलेगा कि १६ वा २० आदि वर्ष की अवस्था में कन्या का विवाह करना चाहिये ॥

वे० प्र० वर्ष १० पृ० ५ से १२ तक में „ पितृयज्ञ का व्याख्यान " ऐसा हेडिंग रख कर मन माना ऊटपटांग लेख किया है। आर्यसमाजियों का एक लक्षण यह भी सिद्ध है कि किसी विषय का भी विचार मूल से जो न करे किन्तु उस विषय में अन्य ऊपरी मन मानी मिथ्या कल्पना जो करे वही पुरुष आर्यसमाजी है। क्योंकि यह आर्यसमाजी मत वास्तव में विना जड़ का बालू की भीत के समान है। इसी कारण मूल से ले कर किसी बात का विचार कभी नहीं चलाते। पाठक महाशय! शोचिये कि जैसे विवाह, उपनयन, चूड़ाकर्मादि शब्द एक २ प्रकार के कर्म के नाम हैं। और उन २ विवाहादि कर्मों की प्रक्रिया जैसी २ सिलसिलेवार गृह्यसूत्रादि में लिखी है तदनुसार विवाहादि की पद्धतियां बन गई हैं और वैसे ही वे कर्म सनातनधर्मियों में बराबर चल रहे हैं। जैसे विवाहादि में किसी को यह शंका नहीं होती कि विवाह जीवित कन्यावरों का होना चाहिये वा मरों का, वैसे ही गृह्यसूत्रादि में (उदकक्रिया) वा अन्त्येष्टि कर्म भी लिखा है उस में भी किसी को यह सन्देह नहीं होता कि यह कर्म मरों का हो वा जीवितों का, किन्तु परम्परा से जैसी २ रीति से विवाहादि कर्म होते आते हैं वैसा सभी जीवितों का विवाह मानते और करते हैं। तथा उदकक्रिया जिस को प्रेतकृत्य वा और्ध्वदेहिक कर्म भी कहते हैं वह मरों के लिये ही होता है। उस में भी पिण्ड

दान जलदान उसी रीति से गृह्यसूत्रादि में लिखे अनुसार किया जाता है कि जैसा श्राद्ध तर्पण में होता है। यदि इन तु०रा० को कोई पूछे कि विवाहादि कर्म के लिये गृह्यसूत्रादि का प्रमाण है तब श्राद्ध तर्पण के लिये उन का प्रमाण क्यों नहीं है? । जब कि विवाह एक कर्म का नाम है तब जैसी २ रीति वा विचार उस का लिखा है वैसा ही करते मानते हैं तब पितृयज्ञ भी एक कर्म है उस की रीति भी गृह्य सूत्रादि में लिखी है तदनुसार क्यों नहीं मान लिया जाता? और यदि नहीं माना जाता तो विवाहादि कर्मों में भी वैसी ही मन मानी कल्पना क्यों नहीं चलायी जाती?। यदि समाजी लोगों का मत किसी प्रकार समूल हो सकता तब तो इन को उचित था कि शास्त्रों की ठीक २ संगति लगाते हुए प्रथम यह सिद्ध करते कि पितृ यज्ञ किस को कहते हैं?। यदि कर्म नाम धेय है तो हमारे समाजी मत में उस की संगति इस २ प्रकार लगे गी। सो ऐसा विचार वा लेख इन समाजियों की ओर से तब हो सकता था कि जब इन का मत वेद के किसी एक देशी अंश को भी लेकर चला होता। सो भी नहीं है किन्तु इनका मत सोलहो आना जब वेद से विरुद्ध मन माना है तब संगति व्यवस्था लगही कैसे सकेगी!। बड़े आश्चर्य्य की बात है कि इन लोगों को वेद का नाम ले २ कर संसार को धोखा देते हुए मन माना मत चलाने में कुछ भी लज्जा भय संकोच नहीं होता!। अस्तु—

इस विषय के व्याख्यान में तु०रा० ने प्रथम पूर्वमीमांसा का यज्ञाधिकार विषय में पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष लिखा है। जिस में सूत्र और शवरभाष्य का प्रमाण दिया है। पूर्वपक्ष में सब चर प्राणियों को यज्ञ का अधिकार दिखाते हुए शवर स्वामी ने लिखा है कि "कालान्तर वा जन्मान्तर में फल चाहते हुए कुत्तों को चतुर्दशी के दिन उपवास करते हम देखते और अष्टमी के दिन श्येन पक्षियों को उपवास करते देखते हैं" इस कारण फलार्थी होने से तिर्यग्योनि के पश्वादि को भी यज्ञ का अधिकार प्राप्त है। शवरभाष्य के इस पूर्वपक्ष पर तु०रा० लिखते हैं कि "इस में केवल हम को यह अच्छा और ठीक नहीं जान पड़ता कि कुत्ते चतुर्दशी में उपवास करते हैं। हम ने इस भाष्य को पढ़ के कई वार चतुर्दशी के दिन कुत्तों को रोटी दी और उन्हों ने खाली" इस पर तु०रा० से हम पूछते हैं कि जब सभी द्विज मनुष्य लोग जो पश्वादि की अपेक्षा विशेष कर धर्म को जानते हैं तो भी एकादशी आदि के व्रत नहीं करते सभी सन्ध्या तर्पण पञ्चमहायज्ञादि नहीं करते और दर्शपौर्णमासादि यज्ञों के जा

नने करने वाले तो लाखों में कोई एक दो होंगे अग्निष्टोमादि के जानने करने वाले क्रोड़ों में कोई २ होंगे तब लाखों कुत्तों की परीक्षा किये बिना तु०रा० का वैसा लिखना वेसमझी क्यों नहीं है ? । क्या शवरभाष्यकार का यह मतलब आप ने समझ लिया? कि चतुर्दशी के दिन सभी कुत्ते उपवास करते हैं। यदि ऐसा समझ गये तो आप की बुद्धि की धन्य है!। जब कि सब मनुष्य ही किसी पर्वादि के दिन नियत समय पर यज्ञादिधर्म कृत्य नहीं कर सकते तब सभी कुत्ते चतुर्दशी को उपवास कैसे कर लेंगे ? अर्थात् कदापि नहीं। भाष्यकार शवर का अभिप्राय यह है कि जो कोई कुत्ते पूर्व जन्म के कुछ शुद्ध संस्कारी होते हैं और किसी प्रबल दुष्कर्म से कुत्ते की योनि में जिन का जन्म होगया है वे ही चतुर्दशी को उपवास करते हैं सब नहीं। भला परीक्षार्थ चतुर्दशी के दिन तु०रा० ने कुत्तों को रोटी तो दी इस का धन्यवाद है। यदि तु०रा० पक्षपात को छोड़ कर सोचेंगे तो समाजियों के हल्ला के भय से स्पष्ट भले ही न लिखें वा न कहें तथापि उन का मन तो अवश्य मान लेगा कि सम्पादक आ०स० का लिखना सत्य और हमारा कुतर्क युक्ति विरुद्ध है। तथा पाठक लोग भी चाहें सनातनधर्मी हों चाहें समाजी हों पक्षपात छोड़ कर विचार ने से सत्य का निश्चय अवश्य कर लेंगे ॥

पाठक महाशय ! देखिये यहां पूर्वमीमांसा के प्रमाण से मनुष्य मात्र को यज्ञाधिकार सिद्ध करते हुए सम्पादक वे० प्र० ने कुछ चोरी समझ पूर्वक की हैं। इस चोरी को हम जैसा कोई ही पकड़ सकता है। तु० रा० की वे तीन चोरी हैं एक तो मनुष्य मात्र को जो यज्ञाधिकार पूर्व मीमांसाकार के सूत्र से तु० रा० ने दिखाया है वह उत्सर्ग रूप सामान्य कथन है उससे आगे विशेष नाम अपवाद रूप सूत्र तु० रा० ने चुराये थे। पूर्व मीमांसा अ० ६ पा० १ सू० २५ से ३८ तक १४ सूत्रों में (यागे शूद्रस्यानधिकाराधिकरणम्) यज्ञ में शूद्र को अधिकार नहीं यह प्रकरण है। जिस में पूर्वोत्तर पक्ष द्वारा ठीक सिद्ध कर दिया है कि शूद्र वेदोक्त यज्ञ नहीं कर सकता। इस बात को तु०रा० ने इस लिये चुराया था कि पू० मीमांसा जैसे शास्त्र में सूत्रों को प्रक्षिप्त कह देना भी दाल भात का निगलना नहीं और यदि पूर्वमीमांसा का लेख स्वीकार कर लें तो शूद्र को वेदाधिकार यज्ञाधिकार मानने का सिद्धान्त जड़ से कटा जाता है। मीमांसा के इसी प्रकरण में यह भी लिखा है कि (अचिकित्स्याङ्गवैकल्यस्य यागानधिकाराधिकरणम्) जिस अङ्ग की दवा नहीं होस-

कती जैसे किसी की एक वा दोनों आंख बिलकुल फूट गयी हों जिस की दवा प्रयाग के हाल साहवादि भी नहीं कर सकते हों उस अङ्ग हीन ब्राह्मणादि द्विज को भी यज्ञ करने का अधिकार नहीं। पाठक लोग जान गये होंगे कि इस विचार को तु०रा० ने क्यों छिपाया था। अर्थात् इस विचार से सम्पादक वे०प्र० स्वयं ही यज्ञ के अनधिकारी सिद्ध होते हैं। क्योंकि तु० रा० एकाक्ष हैं। उस आंख की दवाई भी अब इस जन्म में नहीं होसकती। पाठक शोचिये हमारे सहयोगी तु०रा० संसार भर के मनुष्यों को यज्ञ करने का अधिकार सिद्ध करना चाहते थे सो अपने आप ही अनधिकारी ठहर गये। बड़े खेद का स्थान है कि इस चोरी के खुलने से तु०रा० का अभिभव हुआ। इस के सिवाय मीमांसा के प्रमाणों में एक तीसरी चोरी तु०रा० ने और भी की है कि द्विज स्त्री को सामान्य कर जो यज्ञ का अधिकार पूर्वमीमांसाकार ने लिखा है उससे आगे उसीका अपवाद रूप विशेष कथन यह है कि–

यागे दम्पत्योः सहाधिकाराधिकरणम्।
स्ववतोस्तु वचनादैककर्म्यं स्यात्॥ पू०मी०६।१।१७॥
पत्न्या यावदुक्ताशीर्ब्रह्मचर्यादावेवाधिकाराधिकरणम्।
तस्या यावदुक्तमाशीर्ब्रह्मचर्यमतुल्यत्वात्॥ सू० २४॥

अर्थ–यज्ञ में स्त्री पुरुष को साथ ही अधिकार है केवल विधवा स्त्री को यज्ञाधिकार नहीं है। श्रुति में लिखा होने से धन वाले दोनों स्त्री पुरुषों का एक ही यज्ञ कर्म होता है। पत्नी के लिये जितना यज्ञांश कहा है उसी में उस को अधिकार है। सामान्य कर सब कामों में उस को अधिकार नहीं क्योंकि दोनों तुल्य नहीं हैं। यजमान पुरुष, तथा विद्वान् होता है। पत्नी स्त्री और अविदुषी प्रायः होती है। इस से पत्नी को यज्ञ का सामान्याधिकार नहीं है। इस बात को तु०रा० ने इस लिये छिपाया था कि समाजी मत में पत्नी को बराबर का अधिकार देना लिखा है। तुल्य ठहराने के लिये समाजीलोगों को चाहिये कि पुरुषों के रजोधर्म होने और गर्भ धारण करने का भी कुछ प्रबन्ध शोचें। स्त्रियों के भी डाढ़ी मूंछ लगवा वें तो ठीक २ बराबरी का दावा हो सकेगा। इस प्रकार मीमांसा से तीन अंश तु०रा० ने छिपाये थे जिन को हम ने खोल दिया जिन से समाजी मत का निर्मूल खण्डन होना पाठकों को सम्यक् ज्ञात हो जायगा। क्योंकि ये पूर्व मीमांसा दर्शनादि पुस्तक सनातनधर्म के हैं समाजियों के मत से अधिकांश विरुद्ध हैं॥

(लोभ निन्दा का प्रेरित लेख)

नलुब्धोबुद्ध्यतेदोषां–ल्लोभान्मोहात्प्रवर्तते ॥

लोभातुर पुरुष अनिष्ट कर्मों के अनुष्ठान से उत्पन्न हुये दोषों को कदापि हानि कारक नहीं समझता क्योंकि काम, क्रोध, लोभ, मोहरूपी चोर उस के विवेकरूपी उत्तम धन को इस प्रकार चुरा ले जाते हैं कि जैसे वृद्धावस्था पुरुष के सम्पूर्ण सौन्दर्य को हर लेजाती है, इस लिये वह घृणित कामों के करने में भी तत्पर होजाता है, उस का अन्तःकरण कर्त्तव्याकर्त्तव्य के हानि लाभ कारक परिणाम को शोचने के अयोग्य हो जाता है। जैसे इन्द्रियों के विषयों का लोलुप मन परमार्थ से सर्वथा विमुख होजाता है ॥

कामःक्रोधस्तथामोहो लोभोमानोमदस्तथा ।
षड्वर्गमुत्सृजेदेनमस्मिंस्त्यक्तेसुखीनृप ! ॥

इस श्लोक से हम को कामादिकों के त्याग का उपदेश मिलता है,—

लोभश्चेदगुणेनकिं पिशुनतायद्यस्ति किंपातकैः ।

लोभ का अंकुर जब तक अन्तःकरण में सजीव निवास करता है तो दूसरी बुराईयों से क्या है ? अर्थात् एक लोभ ही सब अपगुणों का शिरोमणि पर्याप्त है, अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से कहाथा कि—

यद्यप्येतेनपश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतंदोषं मित्रद्रोहेचपातकम् ॥
कुलक्षयेप्रणश्यन्ति कुलधर्माःसनातनाः ।
धर्मेनष्टेकुलंकृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥

लोभ से नष्ट हुए चित्तवाले दुर्योधनादि यद्यपि कुलक्षय के दोष को और मित्रद्रोह के करने में पाप को नहीं देखते हैं तो भी उक्त कुकर्मों में दोष देखने वाले हम को इस विषय में अवश्य शोचना योग्य है, कुल के नष्ट हो जाने से सनातन कुल धर्म नष्ट हो जायंगे। जब लोभ से ग्रस्त दुर्योधनादि श्रीमती द्रौपदी जी को सभा में नग्न करने के लिये उद्यत हुये उस समय द्रौपदी ने गांधारी से कहा कि तेरे पुत्रों के चित्त में लोभ और मोह ने इतना अधिक प्रभाव डाला है कि वे अपने माता पिता तथा वृद्धों के सन्मुख इस महापातक के करने में कटिबद्ध हो रहे हैं। सत्य है लोभातुर पुरुष माता पिता तथा गुरु आदिकों की भी परवाह नहीं करता, हेमान्य ! धृतराष्ट्र ! क्या आप के कुल में कुलवधुओं की ऐसी ही गति की जाती है। जो आप